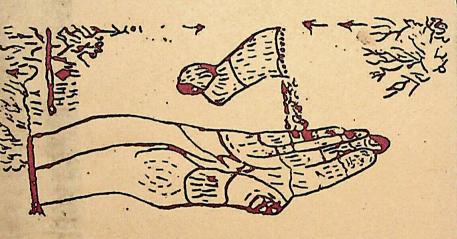
## नगुष्ठ-दानम्



CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खेकड़ातः आषा टक्षणसप्तमी, २०४४ संस्कृतमहा कवे डॉ. श्रीसत्यवत-शास्त्रिणे सार स्वपहतम दुः धरानम् रिक्शिक्षः सारोशकर से ज्ञास्त्रां ।



### ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

(नाटकम्)

रचयिता

### डॉ० राम किशोर मिश्रः

साहित्य-व्याकरणाचार्यः, एम्. ए., पी-एच्. डी.

संस्कृत-विभागाध्यक्षः

महामना-मालवीय-महाविद्यालयः

खेकड़ा-२०११०१ (मेरठ) उत्तरप्रदेश:, भारतम् ।

प्रकाशनतिथिः

गङ्गा दशमी, विक्रम संवत्-२०४४

#### प्रकाशकः

डॉ॰ रामिकशोर मिश्रः
साहित्य-व्याकरणाचार्यः, एम्. ए., पी-एच्. डी.
संस्कृत-विभागाध्यक्षः
महामना-मालवीय-महाविद्यालयः

खेकड़ा-२०११०१ (मेरठ) उत्तरप्रदेशः, भारतम्।

हिन्दीरूपान्तरकारः

डॉ॰ राम किशोर मिश्रः

### कविपरिचायिका

(श्रीमती) श्रीमती देवी मिश्रा, एम्, ए. (हिन्दीसंस्कृतयोः)।

आवरणहस्तचित्रकारः श्री राजेश कुमार मिश्रः, B. Sc.

सर्वस्वं प्रणेतुरायत्तम् ।

मूल्यम् - २०/-

### समर्पणम्

ओ३ङ्कारिमश्रसम्भूतो होतीलालः पिता मम । देवी प्रातः स्मरणीया मातृत्वेन कलावती ॥ १।। ययोरंशेन मे देहे रक्तं वहत्यहर्निशम् । ताभ्यां दिवंगतात्मभ्यामङ्गुष्ठदानमपितम् ॥ २॥ —रामिकशोर मिश्रः।



भारत उत्तर प्रदेश एटा जनपद-सोरोंवासी, वसुभूखात्माङ्किते (२०१८) वैक्रमे वर्षे शास्त्र्युपाधिमान् । होतीलालकलावतीसुतो रामिकशोर मिश्र इह, नाटकमिदमङ्गुष्ठदानमथ पञ्चाङ्के विरचितवान् ॥३॥

### ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

अथ प्रथमोऽङ्कः ।

निर्धनहार्दिकरतिगृहस्थ-

रसनाकमलासनालङ्कृताम् ।

उज्झितधनिकसन्निधि,

नमामि मौर्ख्यतिमिरनाशिनीम् ॥ १॥

मधुरशब्दैरलङ्कारैः,

सिंद्वचारैश्च बुद्धिभिः। सा कविख्यापियत्री मे, भारते भातु भारती॥२॥ नान्द्यन्ते प्रस्तावना।

(ततः प्रविशति सूत्रधारः।)

सूत्रधारः —अलमलम् । (नेपथ्याभिमुखं विलोक्य) मारिष ! पात्रावबोधकवे-शरचना परिसमाप्ता चेत्, तह्यांगच्छ सत्वरम् ।

मारिषः —(रङ्गशालां प्रविश्य) आर्यं ! अयमागतोऽहम् । समुचितमनुष्ठातुं निर्दिशत् भवान् ।

## अड्गुठठ-दान

A THE REAL PROPERTY.

प्रथम अङ्क

निर्धन सहृदय-हृदय गृहस्थित
रसनाकमलाशन पर शोभित ।
त्यक्तधनिक, जनमौद्यंनाशिनी
उस देवी सरस्वती को नत ।।

समधुरशब्द तथा सदलंकृत सद्विचार प्रतिभासमलंकृत । कवियश का प्रसार करती वह हो भारत-भारती उपस्थित ॥ (नान्दी के अन्त में प्रस्तावना)

-: सूत्रधार का प्रवेश:-

सूत्रधार—वस, भाई ! वस । (नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष ! यदि पात्रों की सज्जा समाप्त हो गई हो, तो इघर शोघ्र आओ।

मारिष-(रङ्गमञ्च पर आकर) आर्यं! कहिये, क्या आदेश है ?

C-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosl

सूत्रधार: भाव ! संस्कृतविद्वत्परिषदियं तदेव घोषितपूर्वं नवीननाटकमलो-कयित् सम्प्रति सोत्कण्ठमवतिष्ठते, तदिभनयस्य प्रतिकुशीलवं सप्रयत्नो भवत् ।

मारिष: - आर्य ! चिन्तयाल अम् । सुसम्पादिते भवतामिभनयव्यापारे न किमपि परिहीणं भवेत् । अथाऽऽज्ञापयन्तु भवन्त आर्य-मिश्रान् विज्ञाप्य सत्पर्थं सन्दर्शयन्तः ।

( इति निष्क्रान्त: । )

सूत्रधार:- (अञ्जलि बद्ध्वा सहर्षम्) मान्या विद्वांस: ! रसिकवर्याः स-भ्याः !, पूज्या मातरः ! प्रियस्वसारश्च ! अद्याऽयं परम-हर्षस्य-विषयः, यदस्माभिगं ङ्गातीर स्थितस्य 'सोरों' इत्यूपना-म्ना प्रसिद्धस्य स्वनगरस्य शुकरक्षेत्रस्यैव वासिना श्रीमत्याः कलावती मिश्रायास्तन्जेन पण्डितस्य श्रीहोतीलालमिश्रस्या-त्मजेन त्रयोविंशतिवर्षदेशीयेन श्रीरामिकशोरिमश्राख्येन कवि-ना, संस्कृतगिरा पद्य-बन्धेषु किशोरकाव्य-किशोरगीत - बाल-वीराऽष्टोक्तिशतकादिग्रन्थचतुष्टयं विरचय्य, गद्यबन्धेषु सुदा-याज्नतर्दाह-निबन्धबन्धादिग्रन्थत्रयीं प्रणीय सम्प्रत्येव रचितं नवीनमिदम् "अङ्गुष्ठदानम्" नाम लघुनाटकमभिनीयते, तद्द-र्शनाय भवद्भिरेकाग्रचित्तरेव भाव्यम् । प्रसारितेन हस्तेन नेप-थ्याभिमुखं निर्दिश्य ] एतत्प्रस्तूयते । (इात निष्क्रान्त: ।)

### प्रस्तावनान्ते स्थापना ।

[स्थलम् - वने भिल्लराजस्य हिरण्यधनुषः कुटीरः] (ततः प्रविशति सहपाठिभ्यां सह भिल्लराजसुत एकलव्यः ।) एक: - सखे! किमद्य पाठशालां न गमिष्यसि ?

सूत्रधार— भाई ! यह विद्वानों की सभा उसी पूर्व घोषित नवीन नाटक को देखने के लिए उत्सुक है । अतः प्रत्येक पात्र के प्रति आपका सुन्दर प्रयत्न होना चाहिए ।

मारिष आर्थ ! आप चिन्ता न करें। आपके अभिनय व्यापार में किसी प्रकार का उपहास न होगा। अब आप सभासदों को सम्बोधित कर अभिनय प्रदर्शन की आज्ञा प्रदान करें।

(मारिष का बहिगंमन)

सूत्रधार—(सहर्ष अञ्जलि वांध कर)

माननीय विद्वज्जनों ! रसिकवर्य सभासदो ! पूज्य माताओ और

प्रिय वहनो ! आज यह परम हर्ष का विषय है कि गङ्गा के
किनारे पर स्थित 'सोरों' नाम से प्रसिद्ध अपने नगर सूकर क्षेत्र
के निवासी श्रीमती कलावती मिश्रा के सुत और पण्डित श्री
होती लाल मिश्र के आत्मज त्रयोविंशतिवर्षीय किव श्री रामकिशोर मिश्र द्वारा किशोर-काव्य, किशोर-गीत, बालवीर तथा
अष्टोक्तिशतक नामक चार पद्य - काव्यों की संस्कृत - वाणी में
रचना कर और गद्य काव्यों में सुदाय, अन्तर्दाह तथा निवन्धवन्ध
नामक तीन रचनाओं के प्रणयन के पश्चात् अभी नवीन लिखे गये
इस अङ्गुष्ठदान नामक लघुनाटक का अभिनय करने जा रहे हैं,
जिसे देखने के लिए आपको एकाग्रचित्त हो जाना चाहिए।
(प्रसारित हाथ से नेपथ्य की ओर निर्देश करके) लो, यह नाटक
प्रस्तुत किया जा रहा है।

(बहिगंमन)

(स्थल—वन में भिल्लराज हिरण्यधनु का कुर्टार ।)
(अपने दो सहपाठियों के साथ भिल्लराजपुत्र एकलब्य का प्रवेश)
एक सहपाठी—(एकलब्य से) मित्र ! क्या आज पाठशाला नहीं चलोगे ?

एकलव्य:---निह मित्र !

द्वितीय:-कथमिव ?

एकलव्य:-अधुना मे मनोऽध्ययने न रमते ।

एक:--किमस्य कारणम् ?

एकलभ्य:-इति न जाने।

द्वितीय:—कारणं किमिति ? सम्प्रतीयं षोडणवर्षीयावस्था, या कामाध्यय-नादतिरिक्तमन्यन्न वाञ्छति ।

एक:-कालोऽथ मन्मथस्य प्रक्रत्यैव, तच्छास्त्राध्यने कथं रुचि जीयेत ?

एकलव्यः—(सगाम्भीर्यम्) केवलेन शास्त्राध्ययनेनैव जीवनस्य समस्या न सफलीभवन्ति, तत्साधने किञ्दन्यदिप करणीयं भवति ।

द्वितीय: - (सस्मितम्) ज्ञानं दीयते ?

एकलव्यः—(विहस्य) न, किन्तु ..... कामाध्ययनार्थमिह तत्सामग्री सुल-भापि न साम्प्रतम् ।

एकः—(सस्मितम्) सामग्री-प्राप्तौ को विलम्वः ? तव वाग्दानं तु जात-मेव । विवाहस्य निश्चितिरिनिश्चिता सम्प्रति, सापि शीघ्रं नि-श्चिता भवेत्, परमधुना तत्र भवतो मनोऽपंणं युक्तमेव ।

द्वितीय:—(विहस्य) सत्यमुक्तं त्वया। अस्मादेव त्यक्तमध्ययतं मित्रवर्येण। परिणय सिद्ध्यर्थं महाराजा अपि चिन्ताकुला दृश्यन्ते।

एकलन्य:— (गम्भीरतया) न सन्ति चिन्ताकुला पितृचरणाः ममोपयामसा-धनाय । किन्तु ..... , यत्र तेषां चिग्ता तामहं जानामि । युवां तु मधौ स्वकामवेगमुह्ण्य वृथा परिहसथः । विद्यालयत्या-गादन्यत्र मे गमनं निश्चितं विशिष्टिवद्यायोजनाय । एकलव्य-नहीं मित्र !

द्वितीय सहपाठी-ऐसा क्यों ?

एकलच्य — अब मेरा मन अध्ययन में नहीं लगता।

एक —इसका क्या कारण है?

एकलव्य - यह मैं नहीं जानता।

- द्वितीय कारण क्या है, इस समय आपकी सोलह वर्ष की अवस्था है, जो कामाध्ययन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती।
- एक —यह अवस्था स्वभाव से ही कामावस्था है, तो शस्त्राध्ययन में रुचि क्यों हो ?
- एकलव्य-(गम्भीरता के साथ) केवल शास्त्रघ्ययन से ही जीवन की सारी समस्याएँ हल नहीं होती, उनके समाधान के लिए कुछ और भी करना पड़ता है।
- द्वितीय (मुस्कराहट के साथ) ज्ञान दे रहे हो ?
- एकलव्य (हँस कर) नहीं, किन्तु .... कामाध्ययन के लिए उसके लिए अभी सामग्री भी सुलभ नहीं है।
  - एक (मुस्कराते हुए) सामग्री प्राप्त होने में कितनी देर है ? तुम्हारी सगाई तो हो गई है, विवाह का निश्चय ही तो अभी नहीं हुआ है, वह भी शीघ्र हो ही जायेगा ; किन्तु तुमने तो अपना मन अभी से उस ओर लगा दिया है।
- द्वितीय (हँस कर) तुमने ठीक कहा मित्र ! इसी कारण इन्होने पढ़ना छोड दिया है। इनके विवाह के लिए तो महाराज भी चिन्तित दिखाई देते है।
- एकलव्य—(गम्भीर होकर) पिताजी मेरे विवाह के लिए चिन्तित नहीं हैं किन्तु ·····, उन्हें जो चिन्ता है, उसे मैं जानता हूं। तुम दोनों तो इस वसन्त ऋतु में अपने कामवेग को लेकर व्यथं ही मेरा उपहास कर रहे हो। इस विद्यालय को छोड़ कर किसी दूसरी जगह किसी विशेष विद्या की प्राप्ति के लिए मेरा जाना निश्चित

तेनाहं पितुः सन्निधि ब्रजामि। श्रृणुतम् —

कस्यचिदपि सद्गुरोः सकाशात्, जगति धर्नुविद्यामवाप्तुकामः । विद्याकेन्द्रं जिगमिषामि किञ्चन, येनारिभयान्निर्भया भवेम ।। ३ ॥

(इति गमनं नाटयन्निष्क्रान्तः।)

(पटीक्षेपः)

पट उत्क्षिप्यते ।

[ततः प्रविश्वत्येकस्यां शिलायामुपविष्टः सिचन्तो भिल्लराजः ।]
हिरण्यधनुः— (स्वगतम्) यावन्न गृह्णाति पुत्रो धनुविद्याम्, कुतस्तावत्सुखम् ?
अवस्थापि तस्य समराय तं नियोजयित, परमद्यापि न तेन
स्ववंशपरम्परागता धनुविद्या गृहीता । किन्तु ....., शत्रवस्तु वार्द्वेक्यं गते मिय निरन्तरं प्रवर्धन्ते । आः ! जीवनेऽस्मिन् खलु जनश्चिन्तया परिवृतोऽस्ति सततम् । (इति स
चिन्तामुखं निरूपयित ।

एकलब्य: —(अपटीक्षेपेण प्रविश्य साञ्जलिः) प्रगनामि पितः !

हिरण्यधनुः — (सस्नेहं स्वपुत्राभिमुखमवलोक्य) चिरंजीव पुत्र ! (शिरिस हस्तं प्रसारयति ।)

एकलव्य:- (सगम्भीरमुखम्) पितः ! कतिपयै दिवसैरहं खरु भवन्तं चिन्ताकुलमेव पश्यामि । नाहं जाने तात ! किमस्य कारणम् ? (सविनयम्) यदि किमप्यपराद्धं मया, तत्क्षन्तव्योऽयम्, परं मनोगतं प्रकटियतुं

है। इसी लिए मैं पिता जी के पास जा रहा हूँ। एक — किस विशेष विद्या को पाने के लिए · · · · ? एकलव्य — सुनो,

मित्र ! धर्नुविद्याशिक्षण हित मुझे कहों अब जाना होगा । जनकहृदय में स्थित शत्रुजभय मुझ को दूर भगाना होगा ।।

(नाट्यिशिध से उसका बहिर्गमन) जवनिका पतन । पर्दा उठता है ।

(एक शिला पर बैठे हुए सचिन्त भिल्लराज का प्रवेश)

हिरण्यधनु—(स्वगत) जब तक पुत्र धनुर्विद्या ग्रहण नहीं करता तत्र तक सुख कहाँ ? उसकी अवस्था भी उसे युद्ध के लिए नियोजित करती है, किन्तु अभी तक उसने वंग की परम्परागत धनुर्विद्या नहीं सीखी। किन्तु … ग्रत्रु तो मेरे वृद्ध होने पर निरन्तर बढ़ते ही चले जा रहे हैं। अहो ! इम जीवन में ता प्रत्येक व्यक्ति चिन्ताओं से घिरा हुआ है। (इस प्रकार वह अपने चिन्तित मुख को प्रदर्णित करता है।)

एकलब्य — (विना पर्दा गिरे प्रविष्ट हो हाथ जोड़ कर) पिता जी ! प्रणाम !

हिरण्यधनु-(स्नेह के साथ अपने पुत्र की ओर देखकर) पुत्र ! चिरजीवी बनो ।

(सिर पर हाथ फैलाता है)

एकलव्य—(मुख से गम्भीर होकर)
पिता जी ! कुछ दिनों से मैं आपको चिन्ताकुल देख रहा हूं।
इसका क्या कारण है ? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।
(विनम्रता के साथ) यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो उसे
क्षमा करें और अपने मन की बात अवश्य बतायें। (उस्कण्ठा

प्राथये। (सोत्कण्ठं पितुर्मुं खं विलोकयति।)

हिरण्यधनुः — (सस्मितम्) शेषन्तु कुशलम् । परमायुष्मन् ! त्वद्विषयिणी चिन्ता विद्यते मम हृदि ।

एकलव्यः — (साश्चर्यम्) मद्विषयिणी ?का नाम मद्विषयिणी चिन्ता पितः! यथाऽऽज्ञापयतु तातः, तथाऽहं कर्तुमुद्यतोऽयम ।

हिरण्यधनु:-- पुत्र ! ऋणु--तव चिन्ता मे वर्तते हृदि सदा सम्बन्धिता विद्यया ।
का विद्या सा भिल्लवंशवशगा ? जानन्ति सर्वे नराः ॥
यदि नो सम्यक्परिचिता वै तया स्यामेह, शत्रुवजेजीवनमस्ति, नयेम तत्प्रतिपदं संघर्षयुक्तं कथम् ? ॥४॥

एकलव्यः — आम्, ज्ञातम् । तद्धनुविद्या ग्राह्या पितः !

हिरण्यधनुः— (सहषंम्) आम्, वत्स ! साधु विदितं त्वया त्वं तद्विद्यायां सम्यक् प्रवीणो भवेश्चेत्, तत्स्वशत्रून् पराजित्य भिल्लानामेत-न्महद् राज्यं निर्वहेः । यतः— विजितत्वित्प्रयपूर्वजान् जय रिपू स्तान्, यैवंयं दुखिताः । दुष्टाश्चिन्तां सज्जना यान्तु श्रं तव शासने भिल्लजाः ॥
रिपवस्ते भीता भवन्तु धनुषः सञ्चालनाद् भूतले ।

द्विगुणं चन्द्रसमं यशः प्रतिदिनं ते स्यादिदं कामये ॥५॥ एकलव्यः — यथाऽयं पूज्यकामः । तदयं सन्मार्गं निर्दिशतु ।

हिरण्यधनुः - (सचिन्तम्) परम् ·····, वत्स ! नैतादृशः कोऽपि गुरुर्मे दृष्टिपथमायाति, यस्त्वां धनुर्विद्यः शिक्षयेत् ।

एकलव्यः — (किञ्चिद् विचार्यं) किमाचार्यद्रोणो न शिक्षयिष्यति माम् ?

हिरण्यधनुः - (साश्चार्यं) आचार्यद्रोणस्त्वां शिक्षयिष्यति ? सन्देहमत्र गाहते मे मनः। के साथ पिता के मुख को देखने लगता है।)

हिरण्यधनु —(मुस्कराते हुए) शेष तो कुशल है, किन्तु पुत्र ! मैं आजकल तुम्हारे विषय में ही चिन्तित रहता हूं।

एकलव्य — (आश्चर्य के साथ) मेरे विषय में ! मेरे विषय में आपको क्या चिन्ता रहती है पिता जी ? मुप्ते तो आप जैसी आजा देगें, मैं वेसा ही कार्य करने को उद्यत हूँ।

हिरण्यधनु —पुत्र सुनो — तेरी चिन्ता मेरे मन में, तुमने वह विद्या नहि सीखी । जाओ तीर कमान चलाओ, जिसको कहते सब नर तीखी ।।

एकलव्य — अच्छा समझा, तो धनुर्विद्या मुझे सीखनी है पिता जी !

हिरण्यधनु - (सहर्ष) हां वत्स ! तुमने ठीक ही समझा है। यदि तुम उस विद्या में अच्छे प्रकार से प्रवीण हो जाओ तो अपने शत्रुओं को हरा कर भीलों के इतने बड़े राज्य का निर्वाह कर सकोंगे। क्यों कि मैं ऐसा चाहता हूँ — जिन ने तेरे पूर्वज मारे उनको तुम जाकर संहारो, जिन भिल्लों ने हमें सताया तुम अब उन भिल्लों को मारो। पुत्र ! वंश की कीर्ति बढ़ाओ तीखी तीर कमान चल ओ, शत्रुपक्ष को हरा धर्जुविद्या के जग में तुम छा जाओ।

एकलव्य - जैसी पिता जी की इच्छा ! मुझे सन्मार्ग दिखाइए।

हिरण्यधनु – (सचिन्त) किन्तु : व्या वत्स ! ऐसा कोई गुरु मेरी दृष्टि में नहीं आ रहा है, जो तुम्हें धनुर्विद्या सिखा सके।

एकलव्य — (कुछ विचार कर) क्या आचार्य द्रोण मुझे नहीं सिखायेंगे ? हिरण्यधनु – (साश्चर्य) आचार्य द्रोण तुम्हें शिक्षा देंगे-इसमें मुझे सन्देह है।

एकलव्यः — (सोत्कण्ठम्) कथमिवैतत् पितः ।

हिरण्यधनुः – ते सन्ति ब्राह्मणाः पुत्र ! वयं शवराः । सर्वथा ते त्वामस्पृश्य-मेव मंस्यन्ते । पुनः कि शिष्यत्वमस्माकं स्वीकरिष्यन्ति ?

एकलब्यः — (सामि नायम्) कथन्न पितः ! ते सन्ति महान्तो विद्वांसः समर्दाभनश्च । एतादृशा न खलु जाते-रुत्तमाऽधमभेदपाशे पतन्तीति मे दृढीयान् विश्वासः । पुनराज्ञापयतु यथा तातः ।

हिरण्यधनुः - (सहर्षम्) अस्तु, वत्स ! तावदागच्छ, स्वमातुराशिषं ग्रहाण। ततस्तव गमनं भवेत् ।

( इति सुपुत्रो निष्क्रान्तः । )

#### पटाक्षेपः।

पटोत्क्षेपः ।

[ततः प्रविशति कुटीद्वारि स्थिता एकलव्यस्य माता ।]

माता — (सचिन्तम्) पुत्रस्तु परिणेयः, परं न जाने तस्य पिता तं कथन्नाद्यापि विवाहियतुमीहते ?

[अपटीक्षेपेण ततः प्रविशति सपुत्रो हिरण्यथनुः ।]

हिरण्यधनुः - सुभगे ! तवाऽयं पुत्रो धनुर्विद्यां शिक्षितुमीहते ।

एकलव्यः — (साञ्जालः) मातः ! प्रणमामि !

माता — चिरंजीवो भव पुत्र ! (सस्नेहम्) वत्स ! कथिमयं शीघ्रता ? या तव मुखाकृत्या प्रतिपदं प्रतिभाति ।

एकलब्यः — (साभिलाषं विनम्रम्) पूज्ये ! रणविद्यां शिक्षितुं जिगमि-षामि । सम्प्रति को नियोगो भवतु ?

माता — (सोत्कण्ठम्) वत्स ! स एव ममाऽऽदेशः, यस्तव पितुर्भवेत् (सस्तेहं-पुत्रमुखं प्रतीक्षते ।) एकलव्य — (सोतकण्ठ) पिता जी ! ऐसा क्यों ?

हिरण्यधनु — पुत्र ! वे ब्राह्मण हैं और हम भील हैं। अतः वे तुम्हें अस्पृश्य मानेंगे, फिर वे तुम्हें कैसे शिष्य खीकार करेंगे ?

एकलव्य — (साभिलाप) पिताजी ! वे मुझे शिष्य क्यों नहीं स्वीकार करेंगे ? वे बड़े विद्वान् और सन शीं हैं। ऐसे विद्वान् जाति-पांति के भेद भाव के पचड़े में नहीं पड़ते—ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, फिर आप की जैसी आजा।

हिरण्यधनु (सहर्ष) अच्छा पुत्र ! तुम्हारा ऐसा विश्वास है, तो आओ और अपनी माँ का आशीर्वाद ले लो, फिर धनुविद्या ग्रहण करने के लिए प्रस्थान करो । मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा । (पुत्र के साथ बहिर्गमन) (जवनिका पतन।)

#### (पट का उत्पेक्ष )

(अपनी कुटिया पर वैठी एक लब्य की माता का प्रवेश)

माता — (सचिन्त) पुत्र तो विवाह के योग्य है, किन्तु न जाने उसके पिता जी अभी उसका विवाह क्यों नहीं करना चाहते ?

(विनापर्दागिरे पुत्र के साथ हिरण्यधनुका प्रवेश)

हिरण्यधनु — सुभगे ! यह तुम्हारा पुत्र धनुर्विद्या सीखना चाहता है। एकलव्य — (हाथ जोड़कर) माता जी ! प्रणाम ।

माता— पुत्र ! चिरजीवी बनो (स्नेह के साथ) पुत्र ! यह शीघ्रता कैसी? जो तुम्हारे मुख की आकृति से प्रतिक्षण प्रकट हो रही है।

एकलव्य — (साभिलाष विनय पूर्वक) पूज्य माता जी ! मैं रणविद्या की शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाना चाहता हूँ। अत: आपका क्या आदेश है ?

माता — (सोत्कण्ठ) वत्स ! वही मेरा आदेश है, जो तुम्हारे पिता जी का

हो। (स्नेह के साथ पुत्र को देखती है।)

### १४ अङ्गुष्ठदानम्/प्रथमोऽङ्गः

एकलव्यः — (सहषंम्) तद् गच्छामि मातः ! (गमनं निरूपयित)।
मातापितरौ- (पुत्रस्य मस्तके तिलकं कुर्वन्तौ सहषं शुभाशिषं वदतः)
सफलाः सन्तु ते कामा गुरुं संश्रयतः परम्।
देवाः सर्वत्र रक्षन्तः पथः कुर्वन्तु ते शुभान्।।६॥
(एकलव्यो गच्छति। जवनिका पति। सर्वे निष्क्रान्ताः)
(नेपथ्ये शब्दाः श्रयन्ते)
भारत उत्तर प्रदेश एटाजनपद-सोरोवासी,
विक्रमस्य वसुभूखात्माव्दे (२०१८) चैत्रे शास्त्र्युपाधिमान्।
होतीलालकलावतीसुतो रामिकशोरिमश्र इह,
नाटकेऽङ्ग ष्ठदाननामके प्रथमाङ्कं विरचितवान्।।७॥

इत्याचार्यरामिकशोरिमश्रकृताऽङ्गुष्ठदाननाटके प्रथमोऽङ्कः समाप्तः ।



एकलव्य — (सहर्ष) अच्छा, तो माता जी ! मैं जाता हूं। (जाने का नाटक करता है।)

माता पिता—(पुत्र के मस्तक पर तिलक करते हुए सहवं आशीर्वांद देते है।)
सफल हो कामना तेरी गुरू के पास में जा कर।
देव रक्षा करें संकट समय में पास में आकर।।
(एकलब्य जाता है। जवनिका गिर्ती है। सब निकल जाते है)
(नेपथ्य से कुछ शब्द सुनायी देते हैं।)

भारत उत्तर प्रदेश एटा जनपद सोरोंवासी, होतीलाल-कलावती-तनय 'शास्त्री' उपाधिधारा । रामिकशोर मिश्र ने रचना की अंगुष्ठदान की, संवत् दो हजार अट्ठारह हो कविकीर्ति-विहारी ।।

प्रथम अंक समाप्त ।



### ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

### अथ द्वितीयोऽङ्कः ।

स्थलम्-रणविद्यापीठः, हस्तिनापुरम् । (ततः प्रविश्वन्ति पाण्डवकौरवादिविद्यार्थिनः ।)

दुर्योधनः — ( युधिष्ठिरमभिलक्ष्य ) भ्रातः ! अद्य धर्नुविद्यायाः घोषितपूर्वे परीक्षा दिनम् । न जाने के के साफल्यमवाप्स्य-ग्तीति ?

युधिष्ठरः — साफल्यं स एव प्राप्स्यति, येनैकाग्रचित्तेन तत्राऽभ्यासः कृतो भवेत् । अन्यथा स द्वितीयमागामिपरीक्षादिनं प्रतीक्षेत ।

दुर्योधनः — अभ्यासस्तु मयापि कृतो भवतापि, परं तत्र सफलः को भव-तीति परिणाम एवोद्घोषयिष्यति ।

भीमः — (युधिष्ठिरं प्रति) भ्रातः ! कदा ज्ञास्यते परिणामः ?

युधिष्ठिरः — नेयं वैधानिकी परीक्षा, यस्याः परिशामः सप्ताहत्रये प्रकाशितो भवेत् ।

भीमः — ततस्तत् किम् ?

युधिष्ठिर: — यदा परीक्ष्यते िन्यात्मकम्, तदैव तत्परिणामोऽपि समुद्घोष्यते गुरुणा । (दुर्योधनं प्रति मुख कृत्वा) कथ्यताम् युक्तमुक्तं न ?

दुर्योधनः — (सिशार:कम्पम्) अथ किम्?

अर्जुनः — (युधिष्ठिरं प्रति) भ्रातः ! समयस्तु जातः, त्वर्यताम् ।

युधिष्ठिर: — वरम्, (सर्वान् प्रति)—

एत, गच्छाम, साफल्यं कर्मणा लभते नरः। कालस्तत्प्रकाशयति, तत्र कि चिन्तयाऽनया ॥१॥

## अङ्गुष्ठ-दान

### द्वितीय अङ्क

(स्थल-रणविद्यापीठ, हस्तिनापुर)

—:पाण्डव कौरवादि विद्यार्थियों का प्रवेश:—

दुर्योधन — (युधिष्ठिर की और दृष्टि करके) भाई ! आज धनुर्विद्या का घोषित परीक्षा दिन है। न जाने कौन कौन इसमें सफल होंगे ?

युधिष्ठिर — सफलता उसी को प्राप्त होगी, जिसने एकाग्रवित्त से उसमें अभ्यास किया होगा। अन्यथा भाई! उसे दूसरे आगामी परीक्षा दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

दुर्योधन — अभ्यास तो मैंने भी किया है और आपने भी, किन्तु इसमें कौन सफल होता है ? यह तो परिणाम बतायेगा।

भीम- (युधिष्ठिर की ओर) परिणाम कब ज्ञात होगा ?

युधिष्ठिर-यह वैधानिक परीक्षा नहीं, जिसका परिणाम तीन सप्ताहों के बाद प्रकाशित हो।

भीम - तो फिर क्या ?

युधिष्ठिर — क्रियात्मक परीक्षा जब भी ली जाती है, उसी समय उस का परिणाम भी गुरु जी द्वारा घोषित कर दिया जाता है। (दुर्योधन की ओर मुख करके) कहिए भाई! ठीक है न?

दुर्योघन — (स्वीकृति से शिर हिलाते हुए) और क्या ?

अर्जुन — (युधिष्ठिर से) भाई ! परीक्षा का समय हो गया है, शीघ्रता कीजिए।

युधिष्ठिर — ठीक है, (सब से) —

आओ, चलें सफलता को कर्मणा पुरुष जब पाता। चिन्ता में क्यों पड़ें? समय कर्मज परिणाम बताता।। [ततः सर्वे धनुर्विद्यापीठं प्रविशन्ति. गुरुञ्च प्रणमन्ति । गुरुराचार्यद्रोणस्तेभ्य आशिषं ददाति ।]

सर्वे राजकुमाराः-किमाज्ञापयन्ति गुरुवदनानि ?

द्रोणः— श्रृणुत, अस्मदीयाः प्रियशिष्याः ! अद्य यौस्माकं परीक्षादिनं धर्नुविद्याविभागस्य । तदेत, गच्छामो नियतं परीक्षास्थलम् । भगवान् भास्करोऽपि समयस्य सार्धाष्टवादनतामेति । त्वर्यताम्, त्वर्यताम् । विलग्वो न भवेत् ।

सर्वे राजकुमाराः-यथाऽऽज्ञापयन्ति गुरुपादाः।

[सर्वे परीक्षास्थलं प्राप्नुवन्ति । गुरुणा क्रमशः परीक्ष्यन्ते ।]

द्रोणः— पश्यत, तस्मिन् वृक्षे काष्ठिनिर्मिता चटकैकोपविष्टा दरीदृश्यते ।
सर्वे राजकुमाराः-आम्, दृश्यते सा ।

द्रोण:— तस्या वामलोचने चित्रमस्त्येकं पाषाणशकलम् । पश्यथ, किमु न वा ?

सर्वे राजकुमाराः-पश्यामस्तावत् ।

द्रोणः — (अङ्कुल्या निर्दिश्य) तदेव शरव्यं भवताम् ।

सर्वे राशकुमाराः-(सौत्सुक्यम्) अस्तु, आज्ञापयन्तु श्रीचरणाः ।

द्रोणः — (दुर्योधनं प्रति) कि पश्यिस कुरुज्येष्ठसूनो !

दुर्योधनः — गुरुदेव ! तत्सर्वमेव लोके ।

द्रोणः — कुरु तावल्लक्ष्यवेधनम् ।

[दुर्योधनो बाणं प्रक्षिपति परं लक्ष्यवधो न भवति शरश्च पति ।]
द्रोणः — (निराशीभूय) अस्तु, तावदुपविश सुयोधन ! अथ युधिष्ठिर

[तब सब धर्नुविद्यापीठ में घुसते हैं और गुरु जी को प्रणाम करते हैं। गुरु द्रोणाचार्य उन्हें आशीर्वाद देते हैं।]

सब राजकुमार क्या आज्ञा है गुरुदेव !

द्रोण — सुनो हमारे प्रिय शिष्यो ! आज धर्नुविद्या का परीक्षा दिन है, तो आओ, निश्चित परीक्षास्थल पर चलें। भगवान् भास्कर भी प्रातः समय के साढ़े आठ वजा रहे हैं। अतः शोघ्रता करो, शीघ्रता करो, विलम्ब न हो जावे।

सब राजकुमार-जैसी आज्ञा गुरुदेव !

[सब परीक्षास्थल पहुंचते हैं और गुरु द्रोणाचार्य क्रम से सब का परीक्षण करते है।]

द्रोण— देखो. उस वृक्ष पर काष्ठिनिर्मित एक चिड़िया बैठी दिखायी दे रही है।

सव राजकुमार-हाँ वह दृष्टिगत हो रही है।

द्रोण- उसके वामनेत्र में एक रंगीन पत्थर का टुकड़ा है. देख रहे हो या नहीं।

सब राजकुमार-देख रहे हैं गुरुदेव !

द्रोण- (अंगुलि से संकेत करके) वही आपका वेध लक्ष्य है !

सव राजकुमार-(उत्सुकता मे) ठीक है, आज्ञा दें गुम्देव !

द्रोण- (दुर्योधन से) क्या देखते हो कुरुज्येष्ठपुत्र !

दुर्योधन - गुरुदेवं ! सब कुछ देख रहा हूं।

द्रोण— तो लक्ष्य येधन करो।

[दुर्थोधन बाण क्षेप करता है किन्तु लक्ष्यवेधन नहीं होता और वाण पृथ्वी पर गिर जाता है ।]

द्रोण— (निराश होकर) रहने दो सुयोधन इधर बैठो । अब युधिष्ठिर आगे आर्वे ।

```
युधिष्ठिर:-एष आगतोऽस्मि गुरुदेव ! (मौर्च्या बाणं स्थिरीकृत्य, तिष्ठिति)।
   द्रोण: - वत्स ! किमवलोकयसि ?
 युधिष्ठिरः - तत्सर्वमेव, भवन्तं, वृक्षं चटकाञ्चावलोके ।
            अस्तु, धनुभूं मी स्थापय । (निराशमुखं निरूपयति) ।
       [इत्थं क्रमशः सर्वेऽपि राजकुमाराः पार्थादतिरिक्ताः ५रीक्षिताः, परं न
       कोऽपि तेषु सफलो घोषितः । अन्ते पार्थः परीक्ष्यते ।]
 द्रोणः — वत्स ! अर्जुन ! सम्प्रति तवायं समयः ।
 अर्जुनः—(गुरुं प्रणम्य मौर्व्या शरं संस्थाप्य) आज्ञापयतु गुरुदेवः !
 द्रोण:- (साभिलाषम्) किमधुना पश्यसि वत्स !
 अर्जुन:-केवलं वृक्षमेव पश्यामि गुरुदेव !
 द्रोण:- माञ्च !
 अर्जुन:-नो।
द्रोण: - किमधुना ?
अर्जुन:-केवलां चटकाम् ।
द्रोण:- अथ च किम् ?
अर्जुन:--लक्ष्यमेव केवलं तन्तेत्रम् ।
द्राण:-- (सहर्षम्) वत्स ! तद्वे धं कुरु ।
अर्जुनः --यदाज्ञापयति गुरुदेवः । (यदैव शरमस्यति, तदैव
                                                                पक्षिनेत्रं
         निष्पतति)।
द्रोण: — (लक्ष्ये साफल्यमवेक्ष्य गद्गदीभूय सहर्षमर्जुनमुरसाऽङ्गिलव्य)
```

युधिष्ठिर—लो, मैं आ गया गुक्देव ! [प्रत्यञ्चा पर बाण को स्थिर करके खड़ा हो जाता है ।] द्रोण— वत्स ! क्या देख रहे हो ?

युधिष्ठिर—गुरु जी, सब कुछ देख रहा हूं, आपको और चटका को भी।
द्रोण— अच्छा, धनुष को पृथ्वी पर रख दो। (निराश मुख का नाटन
करते हैं।

[इस प्रकार क्रम से सभी राजकुमारों का अर्जुन को छोड़कर परीक्षण किया जाता है, किन्तु कोई भी सफल नहीं होता। अन्त में पार्थ का परीक्षण होता है।]

द्रोण- वत्स अर्जुन ! अब तुम्हारा समय है।

अर्जुन — (गुरु जी को प्रणाम करके प्रत्यञ्चा पर बाण को चढ़ा कर) आज्ञा दीजिए गुढ़देव !

द्रोण — (साभिलाष) क्या इस समय देख रहे हो वत्स !

अर्जुन — केवल वृक्ष को ही देख रहा हूं गुरुदेव !

द्रोण — और मुझको ?

अर्जुन--- नहीं।

द्रोण — अब क्या ?

अर्जुन- केवल चिड़िया।

द्रोण — और अब क्या ?

अर्जुन — केवल लक्ष्य उसका नेत्र

द्रोण - (सहर्ष) वत्स तो उसका वेधन करो।

अर्जुन — जैसी आज्ञा गुरुदेव ! (ज्यों ही बाण चलाता है, त्यों ही पक्षी का नेत्र निकलकर गिर पड़ता है।]

द्रोण — [लक्ष्यवेधन में सफलता देखकर सहर्ष गद्गद होते हुए अर्जुन की छाती से लगाकर] वत्स !

### मदीयप्रियशिष्येषु श्रेष्ठो भूयास्त्वमेव हि । धनुर्धरेषु विख्यातो भव मम शुभाशिषा ॥२॥

अर्जुनः – (साञ्जलिः प्रणम्य) यथायं गुरुजनानामाशीर्वादः । [ततः सर्वे निष्क्रामन्ति । ]

एकलव्यः — (अपटीक्षेपेण ग्रहीतधनुः सहसा प्रविश्य) किरातराजस्य हिर-ण्यधनुषः पुत्र एकलव्यनामा करवद्धः प्रणमत्ययं गुरुदेव !

द्रोण: — आयुष्मान् भव वत्स ! कथय, किमर्थमागतोऽसि ?

एकलव्यः — (सहर्षम्) श्रीचरणेषु शिक्षितुं धनुर्विद्याम् ।

द्रोण: — (साश्चर्यम्) कि धनुविद्या-शिक्षणार्थम् ?

एकलव्यः — (सौत्सुक्यम्) आमेवं पूज्याः !

द्रोण: — (स्वगतम्)

भिल्लजातोऽत्र शूद्रोऽयं कथमध्येतुमहंति ? यत्रोच्चवर्णशिष्यत्वं शूद्रत्वं तत्र नोचितम् ॥३॥ अपि च.

## शास्त्रनिषिद्धस्स्पर्शोऽस्य, शिष्यत्वे कथमानुकूल्यमेयात्? तदुच्चस्वप्रतिष्ठायै, प्रवेशो नाऽत्राऽस्योचितः ।।४।।

(प्रकाशम्) परमेका विषमस्थितिर्वत्स !

एकलब्यः — (विनम्रम्) तामहं जानामि, वृथा चिन्तयाऽलम् । शिक्षणका-

्रं लादितिरिक्तो मे वासः सदा दूरे भवेत्।

द्रोणः - नैतद् नैतद् वत्स !

# वत्स ! मेरे शिष्यों में तुम, रहोगे वीर श्रेष्ठ हरदम ! बनो विख्यात धनुर्धर तुम, तुम्हें आशीष दे रहे हम ॥२॥

अर्जुन — (करवद्ध प्रणाम करके) जैसा गुरु जी का शुभाशीर्वाद! [तभी सभी राजकुमार वहाँ से वाहर निकलते हैं।]

एकलब्य— [बिना पर्दा गिरे धनुष को हाथ में ले प्रविष्ट होकर]
यह किर।तराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलब्य आपको प्रणाम
करता है गुरुदेव!

द्रोण — आयुष्मान् रहो वत्स ! कहो, किसलिए आये हो ? एकलव्य— (सहर्ष) गुरुदेव के चरणों में धर्नुविद्या सीखने के लिए ।

द्रोण — (आश्चर्य) क्या धनुर्विद्या सीखने के लिए ?

एकलव्य — (उत्सुकता से) हाँ, गुरुदेव।

द्रोण — [अपने मन में]

भिल्ल जाति का शूद्र यहाँ कैसे शिक्षा पायेगा ? उच्च वर्ण के शिष्यों में यह निम्न कहाँ निभ पायेगा ? शूद्र वर्ण का शिष्य यहाँ यह मेरे आड़े आयेगा। द्विजातियों के विद्यालय में कैसे प्रवेश पायेगा ? ॥३॥

इससे अब यह कहना होगा, शूद्र प्रवेश पर लगा निषेध । जाओ मन को लगा हृदय से करते रही लक्ष्य का वेध ॥४॥ [स्पष्ट रूप में एकलब्य से]

किन्तु एक विषम परिस्थिति है वत्स !

एकलव्य (विनम्रता से) उसे मैं जानता हूं गुरुदेव ! आप चिन्ता न करें। शिक्षणकाल के अतिरिक्त मेरा थास सदा दूर रहेगा।

द्रोण - यह बात न हीं है वत्स !

एकलब्य: — (सशङ्कम्) तत् किमिति कारणं देव ! द्रोण: --- (सकृत्रिमसहानुभूतम्)

### वत्स ! विद्यापीठेऽस्मिन् नार्हेति शूद्रस्य प्रवेशः कथमपि ? किं करवाणि ? विधिरयं जनयति मय्यपि दुःखं त्वामवेक्ष्य ॥५॥

एकलव्यः — (सदुःखम्) शूद्रोऽस्मि, तस्मान्नाहमध्यापियतुं शक्यः । तद्
गच्छामि गुरुदेव ! यथाऽयं भवतां विधिस्तथा शुभो भवतु ।
परमेकाऽपरा प्रार्थना मदीया, यद्यनुमितभंवेत्, कथयामि ।

द्रोण :- (सविस्मयम्) कथय, सा का ?

सर्वे निष्क्रान्ताः।)

एकलव्यः — (विनम्रम्) विद्यापीठसमयात्पश्चादेव मे शिक्षणार्थं यदि पृथग-र्घघण्टां गमयितुं श्रीपादाः सानुकम्पा भवेयुः, तदहमत्यन्तमनु-गृहीतो भवेयम् । (सौत्कण्ठ्यं गुरुमुखं प्रतीक्षते)।

द्रोण:-(सकृत्रिमसहानुभूतम्) धर्मकृत्येषु प्रवृत्तस्य तदनन्तरं मे मनिस महद् दु:खम्, यदितो निराशीभूय त्वं प्रतिनिवर्तसे । परं कि कुर्याम्? रुद्धदैवोऽस्मि । गच्छ, वत्स ! शुभास्ते सन्तु पन्थानः ।

एकलव्यः — (सदुःखम्) अस्तु, पूज्याः ! गच्छामि । यथा हि भवद्भयो रोचेत, तथा स्यात् परिमत्थमाशासे स्म नो । अहो! हतभाग्योऽहम् । (निराशत्वं नाटयित) प्रणमामि गुरुदेव ! (इति उदासमनाः प्रतिष्ठते) । (द्रोणः कृत्रिमदुःखितमना निरुत्तरो भवति । जवनिका पति ।

इति रामिकशोरिमश्रकृताऽङ्गुष्ठदाननाटके द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः । एकलव्य — (शङ्का से) तो फिर क्या कारण है गुरुदेव !

द्रोण — (कृत्रिम सहानुभूति के साथ)

वत्स ! हमारी इस संस्था में शूद्रप्रवेश सर्वथा निषिद्ध ।

परवश हूं क्या करूँ नियम से हृदय हो रहा दुख से विद्ध ॥ ॥ ॥

एकलव्य — (दुःख के साथ) शूद्र हूँ, इसलिए मुझे शिक्षा नहीं दी जा सकती, तो जाता हूँ गुरुदेव ! यह आपका नियम आपके लिए शुभ रहे। मेरी एक प्रार्थना है, यदि अनुमति हो तो कहूँ।

द्रोण - (आश्चर्य के साथ) कही, क्या है ?

एकलव्य — (विनम्रता से) विद्यापीठ के समय के बाद मेरे शिक्षण के लिए यदि अलग से आधा घण्टा मुझे देने की कृपा करें, तो मैं अत्यन्त आभारी रहूंगा।

[उत्कण्ठा के साथ गुरु के मुख को देखता है।]

- द्रोण [कृत्रिम सहानुभूति के साथ] विद्यापीठ के समय के बाद अपने कृत्यों में लग जाने से मेरे पास समय ही कहां रह पाता है, जिससे तुम कृतकार्य हो सको। मेरे मन में इस बात का बहुत दु:ख है कि तुम यहाँ से निराश होकर लौट रहे हो, किन्तु क्या किया जाय ? मैं तो नियमों में बंधा हूँ। जाओ वत्स! तुम्हारा मार्ग कल्याण कारी हो।
- एकलव्य (दु:ख के साथ) अच्छा गुरुदेव ! जाता हूँ। जैसा आपको अच्छा लगे, वैसा ही हो, किन्तु मुझे ऐसी आशा नहीं थी। अहो ! मैं बहुत ही मन्दभागी निकला। [निराश होता है।] गुरुदेव ! प्रणाम। [उदास होकर चल पड़ता है।] (द्रोण बनावटी दु:खितमन हो निरुत्तर हो जाते हैं। पदां गिरता है। सब पात्र निकल जाते हैं।)

#### द्वितीय अङ्क समाप्त ।

### ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

अथ तृतीयोऽङ्कः

[स्थलम्-कान्तारमार्गः । आकाशे गीयते]

एकलव्यः — (सदुःखं मनसि)—

अहो ! दैव !! प्रतिकूल !!! किमिदं कृतम् ? निदेशं पितु नीं ह्यमन्ये च तम् । न मन्वीत महतां य उपदिष्टमाः किमित्थं रुणद्वीह तत्सत्फलम् ॥

अहो ! देव !! प्रतिकूल !!! किमिदं कृतम् ? । १॥ अकथयत्स यत्ते महान्तो द्विजाः, किराता वयं पुत्र ! दुर्जातिजाः ।

> न नो मान्यता तेषु, ह्यस्पृश्यता, कथं तद् भवेत्तेषु तव शिष्यता?

अहो ! देव !! प्रतिकूल !! किमदं कृतम् ? ।।२।। [इति चिन्तयन् सूर्यतापोद्विग्मः सन् तरुपङ्कितमवलोकयन् विश्रमाय तिष्ठति । परं धनुविद्याविषये विविधं विचारयन् गगनाभिमुखीभूय परमेशं सम्बोध्य चिन्ताकुलोभवति । ] ततो मनसि —

अहो ! परमेश ! किमंहं हतभाग्य एवाऽस्मि ? किमत एव मे शूद्रगेहे जन्माऽभूत् ? हा ! प्रतिकूल !! दैव !!! किमि त्यं कृतम् ? मानवसृष्टौ जातीनां किमन्तरमेतत् ? तेषां गुरूणां मम च ५रस्परं काऽन्या विभिन्नता ?तान्येव शरीराणि, त एवाऽवयवाः, तावेव वर्णौ गौरः कृष्णश्चेति, न किमिप तत्र वैभिन्न्यम् । पुनः

## अङ्गुष्ठ-दान

तृतीय अङ्क

[स्थल-वनमार्ग, आकाश मार्ग में गायन] एकलब्य—(दु:खित मन से)

अहो ! दैव !! प्रतिकूल !!! यह क्या किया ?

कहा जो पिता ने वही पा लिया ।

ना माने बड़ों का उपवेश जो,

दुखी होके जलता उसका जिया ? ।।१।।

कहा था उन्होंने - वे ब्राह्मण हैं उच्च,

मुनो लाल ! मेरे, हम हैं शूद्र निच्च ।

वहाँ है हमारी कहाँ मान्यता ?

अस्वीकृत रहेगी तव शिष्यता ।।२।।

[इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह सूर्य के ताप से उद्विग्न हो तरुपंक्ति देखकर विश्राम के लिए एक जाता है, किन्तु धर्नुविद्या के विषय में विभिन्न विचार करता हुआ आकाश की ओर मुख कर के ईश्वर को सम्बोधित कर चिन्ताकुल हो उठता है।

(अन मं) अहो ! परमेशा ! क्या मैं हतभाग्य ही हूं ? क्या इसीलिए मेरा शूद्र के घर जन्म हुआ है ? हा ! प्रतिकूल !! दैव !!! यह क्या किया ? मानव सुष्टि में जातियों का यह अन्तर कैसा ? गुरु जी में और मुझमें क्या भिन्नता है ? हमारे वे ही शरीर हैं और वे ही अयवष । वे ही दो रंग हैं गौरे और काले । उनमें कोई भिन्नता नहीं है, फिर यह जातिभेद कैसा ?

C-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

(दक्षिणतः परिक्रम्य) आः ! शिक्षितेष्वपि जातिभेदश्चेत्. तत्काऽन्येषामशिक्षितानां गतिः ? किमित्थमेव भवेदैक्यं भारतस्य चिरस्थायि दैव ! किमधुना करवाणि भो: ! समुपदिश, किमयं सभ्यता शिक्षितानाम् ? याऽपरान् सन्तापयति सततम् । अहो ! किमयमेव गुरोरथं: ? यो न शमयति विद्यार्थिनस्तुषम् । विफलं मामवलोकयन्तः कि कथयिष्यन्ति ते मे दुःखिताः पितृचरणाः ? हा !

(बामतः परिक्रम्य) किन्ते ब्राह्मणाः ? वयं च शुद्राः, स्पृश्या अपि न तेषाम् ? हा ! केनेयं दुष्प्रकृतिना जातिर्व्यवस्था-पिता, या परस्परं हृदयानि विस्फारयति नित्यम् । कोऽन्यो धनु-विद्याया गृह: ? यस्य शरणं प्राप्य पिपराणि पितृरिच्छाम् । हा ! हतोऽस्मि, दुर्भाग्य ! (इति सचिन्तम्खः शोचिततमाम्) ।

(नेपथ्ये)

नारायणं नारायणं भज मनः ! नारायणं नारायणम् ।

येन दर्शयता हि सत्पर्थं, सदा ज्ञानेन शिक्षितस्त्वम् । न तत्कार्यं गतो यदि भवेस्तिह भ्रष्टोऽसि सत्यतस्त्वम् ॥३

नारायणं नारायणं भज मनः ! नारायणं नारायणम् । अपटीक्षेपेण ततः प्रविशति गृहीतवीणादण्दभूषितकरः परमेशकी-र्तनपरो ब्रह्मपुत्रो नारदम्नि:।]

एकलब्यः — (मुर्नि दृष्ट्वा साञ्जलिः) प्रणामोऽस्तु मे मुनिचरणयोः । CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(दाहिने मुड़कर) आह ! शिक्षितों में भी यदि जाति भेद होगा, तो अन्य अशिक्षितों की क्या गति होगी ? क्या इसी प्रकार ही भारत की एकता चिरस्यायी रहेगी ? दैव अब मैं क्या करूँ ? मुझे उपदेश दो । क्या यही शिक्षित व्यक्तियों की सम्यता है ? जो दूसरों को सताती है । अहो क्या यही गुरु का अर्थ है ? जो विद्यार्थी की प्यास को शान्त नहीं कर करता । मुझे असफल देखते हुए वे मेरे दुखी पिताजी क्या कहेंगे ? हाय !

(बायें से मुडकर) क्या ब्राह्मण हैं ? और हम शूद्र हैं, जो उनके स्पृथ्य भी नहीं हैं, हाय! यह किस दुष्ट ने जातिव्यव-स्था स्थापित की ? जो पारस्परिक हृदयों को विस्फारित करती है। क्या धर्नुविद्या का अन्य शिक्षक है ? जिसकी शरण में जाकर अपने पिता जी की इच्छा को पूरा कर सकूँ। हाय दुर्भाग्य ! हाय दुर्भाग्य ! मैं तो मारा गया। (इस प्रकार चिन्तितमुख हो सोचने लगता है।)

(नेपथ्य से स्वर सुनायी देता है।)

नारायण नारायण भज मन ! नारायण नारायण । जिसने दिखलाया सत्पथ को,

सदा ज्ञान से शिक्षित हो तुम।
यदि तुमने वह क्रिया नहीं की,
होगे सत् से भ्रष्ट सदा तुम।।

नारायण नारायण भज मन ! नारायण नारायण । [बिना पर्दा गिरे हाथ में वीणा लिये ईश्वर का कीर्तन करते हुए ब्रह्मपुत्र नारद जी का प्रवेश ।]

एकलब्य—(मृति जी को देख हाथ जोड़ कर) मृति जी के चरणों में मेरा प्रणाम हो। मुनि: — (हस्तमुद्यम्य) स्वास्त ते वस्त !

एकलब्यः — (सदु:खम्) क्व मे स्वस्ति देव ! भेदमावपूर्णेऽस्मिन् जगित ?

मुनि: — (साश्चर्यम्) कथमेतत् ? (मिलिनमुखं दृष्ट्वा) दु:खितोऽसि किमर्थम् ? कथय, कस्ते परिचयः ?

एकलव्यः — (सदुःखम्) मुने ! किन्ते प्रयोजनं मे दुःखेन ? अतः परिचयं दत्वापि कि भवेयत् ? अनेन व्यर्थवाह्याडम्बरेण को लाभ ? यद् भूतं तद्भूतम् । वार्तालापेन नाधिकं मां तापय, जानीहि दैवहतकं माम्, किमतः परं देव ! (इति चिन्तया निर्विण्णमुखं नाटयति)।

मुनि: — (तहु:खातिशयमवेक्ष्य) तदिप कथय, प्रियं वत्स ! येनाहं त्व-हु:खनिवारेण सहयोगी भवेयम् । (सस्तेहं तमीक्षते) ।

एकलब्यः — (साम्चर्यविस्फारितनेत्रम्) मदुक्तदुःखनिवारणे सहयोगिनो मनि-चरणाः किम् ?

मुनिः - कथन्न ?

एकलव्यः — परमहं शूद्रोऽस्मि देव !

मुनिः — तेन किम् ? शूद्रस्तु मानवसृष्टौ मनुष्याणां कल्पितो जाति-भेदः । न कोऽपि नीचः, न कोऽप्युच्चः, तस्य परमिपतुः परमा-त्मनो दृष्ट्या सर्वे समानभाजः । परमयमुत्तमाऽध्यमियमबद्धः कल्पितो लोकोचारोऽपि मान्यः । किन्त्विचारन्नेव मां कथय त्वं स्वकीयं सर्वमिष दुःखवृत्तम् ।

एकलव्यः — (साल्पहर्षम्) पूज्यपाद ! भिल्लराजस्य हिरण्यधनुषोऽहं पुत्रो धनुर्विद्यां ग्रहीतुमाचार्यद्रोणसमीपम्गमम् । CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha मुनि-(हाथ उठा कर) व्तस ! तेरा कल्याण हो।

एकलव्य — (दु:ख के साथ) कहाँ है मेरा कल्याण देव ! इस भेदभाव से भरे जगत् में ?

मुनि—(आश्चर्य से) यह कैसे ? (मिलन मुख देख कर) किसलिए दु:खी हो ? कहो, तुम्हारा परिचय क्या है ?

एकलब्य—(दु:ख के साथ) आपको मेरे दु:ख से क्या प्रयोजन है मुनिदेव ! इसलिए परिचय देकर भी क्या होगा ? इस व्यर्थ वाह्याडम्बर से क्या लाभ ? जो हुआ सो हुआ। वार्तालाप से अधिक मुझे मत सताओ। मुझे दैवहत जानो, इससे अधिक कुछ नहीं देव ! (इस प्रकार चिन्ता से अपने दु:खी मन को प्रकट करता है।)

मुनि—(उसे अत्यन्त दुःखी देखकर) तब भी कहो. प्रिय वत्स ! जिससे मैं तुम्हारे दुःखनिवारण में सहयोगी हो सक्। (स्नेह के साथ देखते हैं।)

एकलब्य — (आश्चर्य के साथ नेत्र फाड़ कर) मेरे दुःख निवारण में क्वा आप सहयोगी बनेगे ?

मुनि-क्यों नहीं ?

एकलव्य-किन्तु मैं शुद्र हूं गुरुदेव !

मुनि—तो क्या शूद्र तो मानव सृष्टि में मनुष्यों का कल्पिय जातिभेत्त है। न कोई नीच है और न कोई उच्च है। उस परम पिता पर-मात्मा की दृष्टि में सब समान है, किन्तु यह उत्तम और अधम रूप में कल्पित लोकाचार भी मान्य है। तुम मुझसे बिना सोच विचार के अपना समस्त दु:ख-वृतान्त कहो।

एकलव्य — (कुछ प्रसन्त होकर) पूज्यपाद ! मैं भिल्लराज हिरण्यधनु का पुत्र हुँ। धनुर्विद्या ग्रहण करने के लिए मैं आचार्य द्रोण के पास गयाथा। परं शूद्रोऽसि त्वम्, नाऽस्मिन् रणविद्यापीठे शूद्राणां प्रवेशः' इत्युक्त्वा गुरुणाऽहं निवारितः । (सरोषम्)

मुने ! कि शूद्र: शस्त्रविद्यामिप शिक्षितुं न योग्यः ? किमेतेषां ब्राह्मणानामेव सर्वत्राऽधिकारः ? शूद्रस्य न क्वापि ? किमय-मन्यायो न ....., ?

- मुनिः (इत्यर्धोक्तावेव तं निरोध्य) अलमलं वत्स ! पूज्यानामितक्रम एव सत्फलावरोधको भवति । अतस्ते विपरीताः अपि स्वमुखेन न कदापि निन्दनीयाः । तद्वैपरीत्यमपि कदाचित् सत्फलदायि भवेत् ।
- एकलब्यः (वितम्रम्) प्रमो ! महान्त एवं स्वयनश्रद्धामुत्पादयन्ति । वयं तु तेषु श्रद्दध्मः । गुरुचरणा यदि मां धनुर्विद्यामशिक्षयिष्यन्, तत्तेषु नाऽऽगमिष्यत्काऽपि स्वल्पता । परमहं शूद्रः, ते ब्राह्मणाः, कथं पुनर्मा शिक्षयितुं शक्नुवित ?
  - मुनिः (स्वगतम्) आचार्यद्रोणोऽस्ति साम्प्रतमर्थसङ्कटग्रस्तः । जाति-वादपाशबद्धेऽस्मिन् जगित स्वमानप्रतिष्ठायं क्षत्रियाणां मध्ये स कथं शूद्रं शिक्षयेत् ? अन्यथा तद्दृष्टौ सा विद्या वर्ण-भेदग्रस्ता विशिष्टजातिपरा च न स्यात् । (प्रकाशम्) नेदं वाच्यं वत्स ! सम्प्रति ते विकटस्थितिवशाः सन्ति । नैतादृशं तेषु किमप्यन्य-दाक्षेप्तुमहंसि । ते सर्वथा तव कल्याणमीहन्ते । मां ब्राह्मणं तैरेव प्रेरितं तव शिक्षायं च समुचितमुपायं विज्ञापयितुं प्रेषितमेवविद्धि ।

किन्तु, तुम तो शूद्र हो, इस रणविद्यापीठ में शूद्रों का प्रवेश निषिद्ध है-यह कह कर गुरु जी ने मुझे धर्नुविद्या सिखाने से मना कर दिया।

(रोष के साथ)

मुनिवर ! क्या शूद्र शस्त्रविद्या भी सीखने के योग्य नहीं है ? क्या इन ब्राह्मणों का ही सर्वत्र अधिकार है ? शूद्र का कहीं नहीं। क्या यह अन्याय नहीं .....?

- मुनि (इस प्रकार आद्या कहते ही उसे रोक कर) बस, भाई ! बस । पूज्यों का अतिक्रमण ही सत्फलों का अवरोधक होता है । इसलिए विपरीत होने पर भी अपने मुख से कभी उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए । उनका विपरीत होना भी कभी कभी सत्फलदायक हो सकता है ।
- एकलव्य—(विनम्न होकर) महाराज ! बड़े लोग ही स्वयं अश्रद्धा उत्पन्न करते हैं । हम तो उनके प्रति श्रद्धा ही रखते हैं । वे गुरु जी यदि मुझे धर्नुर्विद्धा सिखा देते, तो उनमें कोई कमी तो नहीं आती । किन्तु मैं शूद्र हूँ, वे ब्राह्मण हैं, फिर वे मुझे कैसे सिखा सकते है ?
- मुनि—(अपने मन में) आचार्य द्रोण इस समय अर्थसंकट में हैं। जाति—
  पाँति के जाल में जकड़े हुए इस संसार में अपने मान और प्रतिघठा के लिए क्षत्रियों के बीच वे शूद्र को कैसे शिक्षा देते ? नहीं
  तो, उनकी दृष्टि में यह विद्या वर्णभेद से ग्रस्त हो विशेष जातिप्रधान कैसे होती ? (स्पष्ट रूप में एकलब्य से) भाई, ऐसा न
  कहो। इस समय वे जिकट परिस्थिति में फंसे हुए हैं। ऐसा उन
  पर आक्षेप न करो। वे सर्वथा तुम्हारा कल्याण चाहते हैं। मुझ
  ब्राह्मण को उन्हीं के द्वारा प्रेरित किया हुआ और तुम्हारी शिक्षा
  के लिए समुचित उपाय बताने को उन्हीं के द्वारा भेजा हुआ जाने।

यदि त्वं मदुक्तं नावजानीहि, तत्कथयामि ते भूतार्थं किञ्चित्। एकलब्यः — (सहर्षम्) अनुग्रहीतोऽस्मि । कथ्यताम्, क उपायोऽस्ति देव !

मुनिः — (सगाम्भीयंम्) श्रृणु वत्स ! अभ्यासोऽस्येकं तद्वस्तु, यस्याऽऽश्रयेण जनः सर्वविद्यमेव नैपुण्यं प्राप्नोति । अत एव स गुरूणापि गुरुः कथ्यते । गुरुस्तु तदर्थं निमित्तमात्रमेव भवति, परं
गुरुणा विना ज्ञानमपि न सम्पद्यते । अतस्तमेवाऽऽचार्यद्रोणं
स्वगुरुं मन्यमानस्त्वं सादरं सश्रद्धं च हृदये तन्मूर्ति संस्थाप्य
वने धनुर्विद्याऽभ्यासे दत्तचित्तो भव, यतो ह्याचार्यद्रोण एव
तद्विद्यायाः प्रधानाचार्योऽस्ति सम्प्रति जगतीतलेऽस्मिन् । यादृशं
ज्ञानं तद्विषये समपादि तेन, न तादृशमन्येन केनचित् । योग्यगुरोः शिष्यः प्रायेण योग्य एव भवेत् । अतः स्वमनोर्यसिद्धये
तच्छिष्य एव भूत्वा जगन्नियन्तुः परमितुः परमात्मनोऽनुकम्पया समुचितपरिणामभाग् भूयाः ।

एकलब्यः — (प्रसन्नमनाः) प्रभो ! कृतज्ञोऽस्मि भवताम् । भावत्कीयमनुमतिः शिरोधार्या मे । यादृशो मह्यं कल्याणकरः सदुपदेशां दत्तः,
तं न कदापि विस्मरेयं देव ! (इति स मुनेः पादयोः पतिः
मुनिश्च तस्मै शुभाशिषं ददाति) ।

मुनिः — (हस्तमुद्यम्य) वत्स ! सफलो भवेत्तव मनोरथः । गुरुभक्त्या व

यदि तुम मेरे कथन की अवज्ञा न करो, तो मैं तुम्हारे कल्याण के निमित्त कुछ उपाय बता सकता हूं।

एकलब्य- (हर्ष के साथ) मैं आपका अनुग्रहीत हूं। कहिए, क्या उपाय है भगवन् ?

मुनि-(गम्भीरता के साथ) वत्स, सुनो ! अभ्यास ही एक वह वस्तु है, जिसके सहारे सभी व्यक्ति सभी प्रकार की निपुणता प्राप्त कर लेता है । इसलिए वह गुरुओं का भी गुरु कहलाता है । गुरु तो उसके लिए निमित्त मात्र ही होता है, किन्तु विना गुरु के ज्ञान भी सम्पन्न नहीं होता । इसलिए उन आचार्य द्रोण को ही अपना गुरु मानते हुये तुम आदर और सत्यता के साथ अपने हृदय में उनकी पूर्ति को स्थापित कर वन में धनुर्विद्या के अभ्यास में दर्ताचत्त हो जाओ क्योंकि इस समय आचार्य द्रोण ही उस विद्या के प्रधान आचार्य हैं । जैसा ज्ञान उस विषय में उन्होंने प्राप्त किया है, वैसा किसी दूसरे ने नहीं । योग्य गुरु का शिष्य प्रायः योग्य ही होना चाहिए । अतः अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए उनके शिष्य वन कर जग-नियन्ता परमिता परमात्मा की अनुकम्पा से समुचित फल प्राप्त करने वाले वनो ।

एकलब्य — (प्रसन्नमन होकर) भगवन्, मैं आपका कृतज्ञ हूं। आपका यह आदेश शिरोधार्य है। आपने जैसा मुझे कल्याणकारी उपदेश दिया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। (ऐमा कहकर वह मुनि जी के चरणों पर गिर पड़ता है और मुनि जी उसे आशीर्वाद देते हैं।)

मुनि — (हाथ उठा कर) वत्स, तुम्हारा मनोरथ सफल हो। गुरुभिक्त से तुम संसार में सम्मान प्राप्त करो।

#### ३६ अङ्गुष्ठ-दानम्/तृतीयोऽङ्गः

एकलब्यः — (सहर्षम्) अनुकम्पितोऽस्मि देव ! प्रणमामि ।

मुनिः — वत्स ! स्वस्ति ते ।

[ततो गच्छित कीर्तनपरो मुनिः । 'नारायणं नारायणं भज मनः ! नारायणं नारायणम्' इति शब्दैः सर्वेतो गुञ्जितो भविति रङ्गः । एकलब्यो गद्गदहृदयः सन् तं गच्छन्तं मुनि विलोकयन् तन्नैव तिष्ठिति ।]

(जवनिका पतित । सर्वे निष्क्रान्ताः ।)

(नेपथ्ये शब्दा: श्रूयन्ते ।)

भारत उत्तरप्रदेश एटाजनपद-सोरोंवासी'
विक्रमस्य वसुभूखात्माब्दे (२०१८) चैत्रे शास्त्र्युगाधिमान् ।
होतीलालकलावतीसुतो रामिकशोरिमश्र इह,
नाटकेऽङ्गुष्ठदाननामके तृतीयमङ्कः कृतवान् ।।

इतिरामिकशोरिमश्रकृताऽङ्ग ष्ठदाननाटके तृतीयोऽङ्कः समाप्तः।



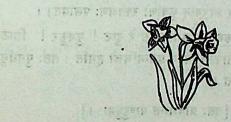
एकलब्य— (हर्ष के साथ) अनुकम्पित हूँ देव !, प्रमाण करता हूं।
मुनि— वत्स! तुम्हारा कल्याण हो।

[कीर्तन करते हुये मुनि चल देते हैं। 'नारायण नारायण भज मन! नारायण नारायण' इन शक्दों से आकाश गूँज उठता है। एकलव्य गद्गदहृदय हो, जाते हुये मुनि को देखता रहता है।]

(पदा गिरता है, सब निकल जाते हैं।)

(नेपथ्य से कुछ शब्द सुनायी देते हैं।) भारत उत्तरप्रदेश एटाजनपद सोरोंवासी, होतीलालकलावतीतनय 'शास्त्री' उपाधिधारी। रामिकशोरिमश्र ने रचना की अङ्गुष्ठदान की, संवत् दो हजार अट्ठारह हो कविकीर्तिविहारी॥

तृतीय अङ्क समाप्त ।



। कर्रा ते अर्थ है किया अन्य (इस्ता अन्य का कार्य है के रिकार

reclard state with the expressioned

(इस्ताह महायुग्ने हो है है, यो हो, में भी, में भी, में

## ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

### अथ चतुर्थोऽङ्कः

[स्थलम् — वने एकलव्यस्य कुटीरः । एकलव्यो ग्रहं न गत्वा, नारदीयोपदेशेन श्रद्धया भक्त्या च हृदये गुरुद्रोणमूर्ति धार-यित्वा दृक्षेषु वाणक्षेपमभ्यस्यति । ततः प्रविशति सारमेयः।]

- सारमेयः (एकलव्यस्य कालं भयानकं रूपमवलोक्य) वुक्, बुक् (बुक्कतितमाम् ।)
- एकलब्यः (कुक्कुरस्य भषणेन शरक्षेपाभ्यासे वाधापातमवेक्य) दूरमपसर रे कौलेयक ! कथं बुक्कयसे ? अपेहि । (लगुडेन प्रहरित ।)
- सारमेयः (लगुडप्रहारेणापि नापसृत्य) बुक्, बुक्, बुक् · · · · खुक्, बुक्, बुक् · · · · ; बुक् · · · (भषतितमाम्)।
- एकलव्यः (सक्रोधम्) अपेहि, अपेहि, रे कुक्कुर ! कथं मुमूर्षेसि ? (धनुः प्रदश्यं तमपसारयति)।
- सारमेयः बुक्, बुक्, बुक्, (धावं धावं भषति)।
- एकलव्यः (सकोपं शरसप्तकं ग्रहीत्वा) तिष्ठ, तिष्ठ, रे दुष्ट कौलेयक ! (प्रत्यालीढमाश्रित्य शरान् प्रक्षिप्य तन्मुखं पिपित्)।
- सारमेयः (शरपीडमा व्याकुलीभूय) ऐं ऐं, भौं भौं, चैं चें, भौं भौं, बुक् बुक् बुक् (इति श्वरवान् कुर्वाणो रक्तेक्षणः पलायते)।
- एकलब्यः (सस्मितम्) कथमथो न तिष्ठिस रे दुष्ट ! कुक्कुर ! तिष्ठ, तिष्ठ । बाणसाफल्यमवेक्य प्रसन्नित्तो हसित । ततः पुनर्धनु- विद्यामभ्यस्यति ।)

#### [ततः प्रविशन्ति पाण्डुपुत्राः ।]

# अङ्गुष्ठ-दान

### चतुर्थ अङ्क

[स्थल — वन में एकलव्य का कुटीर। एकलव्य घर न जाकर, नारद जी के उपदेश के कारण श्रद्धा और भक्ति के साथ हृदय में गुद द्रोणाचार्य की मूर्ति धारण कर, तत्परता के साथ वृक्षों पर बाणक्षेप का अभ्यास करता है। तभी एक कुत्ता आता है।

कुत्ता — (एकलव्य के काले भयानक रूप को देखकर) भौं, भौं, भौं (भौं-कता है।)

एकलव्य-(कुत्ते के भौंकने से तीर चलाने में बाघा देखकर) दूर जा रे कुत्ते! क्यों भूंसता है ? दूर हट। (डण्डी से मारता है।)

कुत्ता — (डण्डे की मार से भी दूर न हट कर) भौं, भौं, भौं, · · · · · · · · · वुक् वुक् · · · · · भौं · · · · · वुक् (भौंकता रहता है।)

एकलव्य- (क्रोध के साथ) दूर हट, दूर हट रे कुत्ते ! क्यों मरना चाहता है ? (धनुष दिखाकर उसे भगाता है ।)

कुत्ता — भौं, भौं, भौं, (दौड़ दौड़ कर भौंकता हैं।)

एकलब्य-(क्रोध के साथ सात बाण लेकर) ठहर, ठहर रे दुष्ट कुत्ते ! (पैंतरा बदल कर, बाण मार कर उसके मुख को भर देता है।)

कुत्ता — (शरपीडा से व्याकुल होकर) ऐं ऐं, भौं भौं, चैं चैं, भौं भौं, बुक् मुक् मुक् (इस प्रकार भौंकता हुआ रक्तनेत्र होकर भाग जाता है।)

एकलव्य- (मुस्कराता हुआ) अब क्यों नहीं ठहरता रे दुष्ट कुत्ते ! ठहर, ठहर ! (बाण की सफलता देखकर प्रसन्नचित्त होकर हसता है, और फिर धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगता है।)

[तदनन्तर पाण्डवों का प्रवेश होता है।]

पाण्डुपुत्राः - (स्वकुक्कुरमुखं शरपूर्णनवलोक्य दुःखितमनसस्तन्मुखेन स्पृष्ट-वसनाः सन्तः शरपेक्षकमन्वेषयन्तस्तमेकलव्यं प्रत्येवाऽभिवर्तन्ते ।) कोऽस्ति ? योऽस्मदीयकुक्कुरमुखे वाणानक्षिपत् ।

नकुलः —(दूरत एकलव्यं दृष्ट्वा साङ्ग लिसङ्केतम्) पूज्याः ! भ्रातृचरणाः! ५थयन्तु भवन्तः , 'स कोऽयं दृश्यते ?'

पाण्डुपुत्राः - (साश्चर्यम्) अहो ! कालाकृतिरीदृशो भयानकः (सर्वे चिकताः सन्तः पश्यन्ति ।)

सहदेवः — (सशङ्कम्) अनेनैवाऽस्माकं कुक्कुरमुखे वाणाः प्रक्षिप्ताः स्युः ? यतोऽयं तमेवोपगच्छति सारमेयः । (वाढं कुर्वन्ति सर्वे )।

अर्जुनः — (साश्चर्यम्) लक्ष्यन्त्वस्य वरमहो ! परभयभाकृत्या दुर्जातिजातः। (सेर्घ्यम्) एतादृशी विद्या कुतः समीहिता लब्धा त्राऽनेन, ययाऽ-भिभूयेऽहमपि । (स्वाभिमानं द्योतयित) ।

भीमः - युक्तमुक्तं त्वया ।

युधिष्ठिरः – एत, गच्छामो निकषाऽमुस् । (धर्रे বংগরী বংগভত্তির) গঙ্গ ! কম্বেদামি ? কিহ্বাৎস কুষ্ট ?

एकलब्यः — (प्रणम्य) अस्मि मान्याः ! पुत्रोऽहं भिल्तराज-हिरण्यधनुषो धनुर्विद्यामभ्यस्यामि । भवन्तश्च के ? कथ्मत्रागतैः श्रीमद्भिः कि नगरं वियुक्तमधुना ? सर्वमेतज्ज्ञातुं मे मनः सोत्कण्ठमती-व ।

युधिष्ठिरः — पाण्डुपुत्रोऽह भोः ! युधिष्ठिरो नान नर्वेज्ञिये । (साङ्गुलस-ङ्कोतरः) इने च मे भ्रातरो भानार्यमनकुलसहदेयाः । (सिस्म-तम्) सम्प्रात पृत्याऽन्वेषणाथंभागताः स्मो हस्तिनापुरादिति जानीहि भद्र !

C-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

पाण्डुपुत्र — (अपने कुत्ते के मुख को वाणों से भरा हुआ देख कर दुःखितमन हो उसके मुख द्वारा वस्त्रों के छूने के इशारे से बाण मारने वाले को खोजते हुए उसी एकलव्य की ओर चले आते हैं।) कौन है ? जिसने हमारे कुत्ते के मुह में वाण मारे हैं।

नकुल— (दूर से एकलव्य को देखकर उंगली के इशारे से) आदरणीय भाई जी, आप देखिए, यह कौन है ?

पाण्डुपुत्र-(आश्वर्य से) अहो ! इतना भयानक काला ! (सब चिकत होकर देखते हैं।)

सहदेव— (शङ्कालु होकर) इसी ने हमारे कुत्ते के मुख में बाण मारे हों ? क्योंकि यह कुत्ता उसी की ओर जा रहा है। (सब हाँ करते हैं।)

अर्जुन (आश्चर्य के साथ) इसका निशाना तो ठीक है किन्तु यह आकृति से निम्न जाति का है। (ईप्यों के साथ) ऐसी विद्या इसने कहाँ से प्राप्त की ? जिसने मुझे भी परास्त कर दिया। (स्वाभिमान को प्रकट करता है।

भीम- तुमने ठीक कहा।

युधिष्ठिर-आओ, इसके पास चलें। (सब उसके पास जाते हैं।) भाई ! तुम कौन हो ? और यहाँ क्या करते हो ?

एकलब्य - (प्रणाम करके) मान्यवर ! मैं भिल्लराज हिरण्यधनु का पुत्र हूं, यहाँ धनुर्विद्या का अभ्यास करता हूं। आप कौन हैं ?यहाँ आकर आपने इस समय कौन से नगर को वियुक्त किया है ? यह सब जानने के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।

युधिष्ठिर—मैं पाण्डुपुत्र हूं, युधिष्ठिर नाम से मुझे सब जानते हैं। (अंगुली के इशारे से) ये मेरे भाई हैं भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। (मुस्कराहट के साथ) इस समय हम शिकार खेलने के लिए हस्ति-नापुर से आये हैं—ऐसा समझो।

एकलव्यः — (सहर्षम्) आगम्यताम्, आगम्यतां तावत्, समलङ्क्रियतामा-सनमिदम् ! पवित्रीक्रियतां चरणघूल्या मे कुटीरः । अहो भा-ग्यं ! यद् भवादृशानां पूज्यानामाचार्यशिष्याणामभूदेतन्मधुर-दर्शनम् ।

गुधिष्ठिरः — मैवं भ्रातः । यतो हि— नातिकालं समायाताः प्रष्टुकामास्त्विदं वयम् । कि त्वमेव समर्थोऽभूः पीडियतुं शुनो मुखम् ॥१॥

एकलव्यः — आमेवं कुमार ।
भवति स्मायं कुक्कुरस्सवेगं,
विवृतमुखो मां प्रति दंष्टुकामः ।
विद्याभ्यासे तद्वाधकस्याऽस्य,
वाणैः कृतो मया मुखे विरामः ॥२॥

युधिष्ठिरः — (साल्पकोपं रक्तेक्षणः) समुचितोऽयं मार्गोऽवलम्बितो भवता! परमस्य भ्रातः ! सप्तिभर्बाणैः प्रपीडितस्य भषकस्य मुखमीक्ष-माणेन स्वजाते निर्दयतायाः परिचयोऽपि दत्तस्त्वया! किमेतद् ? सोऽयमासील्लगुडप्रहारेणैव पलायितुं योग्यः । समरे प्रक्षेप्याणा-मेषां निश्चिततीक्ष्णानामिष्णां पुनः काऽऽसीदावश्यकता प्रयोग-स्य ?

एकलव्यः — (विनम्रम्) किमयं भवतामेव विश्वकद्रः ? तदेषोऽहं करोमि शरपीडाविहीनमेनम् । किन्तु ....... हिंसकपशौ तु स-मये प्राप्त उचितदण्ड एव विघेयः । [इत्युक्त्वा शुनकस्य मुखात् स्विनरस्तान् विशिखान् करेण निस्सारयित पाण्डुपुत्राश्च तढ्ढ-नुर्विद्याचातुर्येण कृताश्चर्याः परस्परमीक्षन्ते । ] (सिस्नितम्) मान्या राजपुत्राः ! अथ कथ्यतामाचार्यकुशलदृत्तम् । सन्ति ते एकलव्य — (सहषं) आइए, आइए। इस आसन को अलङ्कृत कीजिए। मेरी कुटी को अपने चरणों की घूल से पवित्र कीजिए। मेरे भाग्य घन्य हैं, जो आप जैसे पूज्य गुरुशिष्यों का आज मधुर दर्शन हुआ। यूधिष्ठिर-भाई ! ऐसी बात नहीं है। क्योंकि-

अधिक समय है नहीं हमारे पास, बताओ हम को।

क्या हम समझें कुत्ते के मुख का छेदक ही तुम को ? ।१। एकलव्य -

हाँ, कुमार ! यह भौंक रहा था, मेरी विद्या का अभ्यास । बाधामय बनता जाता था, रव गुञ्जित हो गया सकाश। अतः शरों से मुख भेदन कर भगा दिया इसको सत्वर । सारमेय क्या पाण्डुपुत्र का? तो लो लूँ निकाल निज शरा।२॥

युधिष्ठिर—(कुछ क्रोधित हो रक्तनेत्र होकर) आपने यह मार्ग ता उचित अपनाया, किन्तु भाई! तुम ने इस कुत्ते के मुख को सात बाणों से पीडित कर अपनी जाति की निर्देयता का परिचय भी दे दिया है। क्या यह ठीक है? जब कि यह डण्डे के मारने से ही भगाया जा सकता था, फिर युद्ध में चलाने योग्य इन तीक्ष्ण बाणों के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी ?

एकलव्य—(विनम्र होकर) क्या यह आपका ही शिकारी कुता है ? तो मैं इसे बाणों की पीड़ा से रहित कर देता हूं। किन्तु हिंसक पशु को समय पर प्राप्त दिया गया दण्ड ही उचित होता है। [ऐसा कह कर कुत्ते के मुख से अपने द्वारा छोड़े गये बाणों को हाथ से निकाल देता है और पाण्डुपुत्र उसकी धनुविद्या की चतुरता को आश्चर्ययुक्त हो परस्पर देखने लगते हैं।] (मुस्कराहट के साथ) माननीय राजपुत्रों ! अब आचार्य जी का कुशलदृत्त कहिए, वे सर्वथा कुशलपूर्वक तो हैं।

एकलन्यः — (सश्रद्धम्) एक एवाऽऽचार्यास्ते धनुर्विद्याया मुवि ।

अर्जुन: -- (सगवंम्) धर्नुविद्याया एव किमु ? निखिलरणविद्यान।मि । अत एव ते सर्वतः प्रसिद्धे हस्तिनापुररणविद्यापीठे प्रमुखकुल-्र प्रतित्वेन विराजन्ते, किन्तु .... ...., केन सम्बन्धेन ते विज्ञायने भवता ?

एकलत्र्यः — (सगर्वम्) चतुर्दिक्षु विस्तीणंकीर्ति तं महापण्डितं को नु जाना-ति नो भ्रातः ! (सस्मितम्) किन्ते विस्मार्य्या नः ?

अर्जुनः — (मोत्कण्ठम्) भवतु नाम । तेऽस्माकं सन्ति गुरवः । परंः , किनामधेयास्तावकीना गुरुचरणाः ? येषां मन्निधौ वहप्रशस्येयं भवता धनुर्विद्या गृहीता । सर्वमेतज्ज्ञातुं मे मनो वाधते कृतूह-लमतीव ।

एकलव्यः — (सहर्षम्) त एव विस्तृतयशसः प्रातस्स्मरणीया गुरुचरणा म-दीयाः, ये सन्ति युष्माकम् । अतस्तेषां सन्निधावितो निवृत्तै में शराभ्यासकौशलं विज्ञापयद्भि में करवद्धः प्रणामोऽपि वाच्यो भवद्भिः ।

अर्जुनः — (साश्चर्यम्) किमाचार्यद्रोणः ? अस्मदीयो गुरुस्त्वदीयश्चापि ? एकलव्यः -- (सस्मितम्) आम्, स एव। (इति श्रुत्वा सर्वे विस्मिता भवन्ति ।)

भीमः — (साक्ष्वयंम्) भ्रातः ! नाऽस्माकं दृष्टिंगतो भवान् कदापि गुरु-कुले। ततो भवता तेषां सकाशात्कदा शिक्षितेयं धर्नुविद्या ? इति ज्ञातुं साभिलाषा वयम्।

एकलव्यः — (सदुःखम्) न कदापि शिक्षितोऽह तदायशिष्य-

राजपुत्र — (सहषं) हाँ, सर्वया कुशलपूर्वक हैं।

एकलव्य-(श्रद्धा के साथ) वे पृथ्वी पर धर्नुविद्या के एक ही आचार्य हैं।

अर्जुन—(गर्व के साथ) धर्नुविद्या के ही क्यों ? समस्त रणिवद्याओं के भी। इसलिए वे सर्वत्र प्रसिद्ध हस्तिनापुर के रणिवद्यापीठ में प्रधान कुलपित के पद पर विराजमान हैं। किन्तु आप ....., आप उन्हें कैसे जानते हैं ?

एकलव्य — (गर्व के साथ) चारों दिशाओं में विस्तृत यश वाले उन महाप-ण्डित को कौन नहीं जानता? (मुस्कान के साथ) भाई ! क्या हम उन्हें भूल सकते हैं ?

अर्जुन— (उत्कण्टा के साथ) अच्छा, वे हमारे गुरु हैं, किन्तु ....,
तुम्हारे गुरु जी का क्या नाम है ? जिनके पास में रह कर आपने
प्रशंसनीय यह धनुविद्या ग्रहण की है। यह सब जानने के लिए
मेरे मन में बहुत कुतूहल उत्पन्न हो रहा है।

एकलब्य—(हर्ष के साथ) वे ही विस्तृतकीर्ति प्रातः स्मरणीय गुरुवरण मेरे भी हैं, जो आपके हैं। इसलिए आपको यहाँ से लौट कर मेरे शराभ्यास के विषय में जानकारी देते हुए उन्हें मेरा करवढ़ प्रणाम भी निवेदित करना चाहिए।

अर्जुन—(आश्चर्य के साथ) क्या आचार्य द्रोण ? हमारे गुरुदेव ही आप के भी गुरु हैं ?

एकलब्य - (मुस्कान के साथ) हाँ, वे ही मेरे गुरु हैं। (ऐमा सुन कर सब विस्मित हो जात हैंं।)

भीम-(आश्चर्य के साथ) भाई! आप तो कभी भी गुरुकुल में हमें दृष्टि-गोचर नहीं हुये। फिर आपने यह धनुर्विद्या उनसे कब सीखी?यह जानने को हम इच्छुक हैं।

एकलव्य — (दुःख के साथ) मैंने जनका शिष्य बन कर कभी भी शिक्षा ग्रहण नहीं की । भाई ! वैसे मेरे भाग्य कहाँ ? यत्तदभ्याशे स्वाभीष्टं ज्ञानमाप्नुयाम् । यतोऽहं श्रूद्रः, ते सन्ति व्राह्मणा उच्चकुलोद्भू तिशष्याचितचरणाः । किन्तु ....., जातिभेदमविगणयन्नह हृदयेन तमेव गुरुं मन्ये । विद्यार्थिना सर्वथा स्वगुरु विस्तीणंयशा एव कार्यः । गुरुमानेनैव हि तदयोग्यशिष्यस्यापि मानो भवेदित्याशया तिच्छष्यत्वं मन्यमानोऽहं स्वयं धनुविद्यामभ्यासे ।

[सर्वे तन्मुखमभीक्षन्ते ।]

युधिष्ठिरः — (सिवस्मयम्) भवदीये धनुर्ज्ञाने लाघत्रं किमधुना ? यद्येविव-धमुपासनं भवेन्निरन्तरं भवतः, तद् धर्नुविद्यायां भवानिष गुरु-रिव विस्तृतयशा भवितुमहैति ।

एकलव्यः — (सहर्षम्) यथा गुरुजनानामाशिषः ।

युधिष्ठिरः — (सस्मितम्) अस्तु, गच्छामो वयम् ।

एकलव्यः — यथा भवद्भ्यो रोचते । (इति करवद्धः प्रणमित ।)

अर्जुनः — (स्वगतम्) सशङ्कः साभिमानञ्च — सत्यं गुरोस्तन्न वचो नु भावि, यन्मे हि शिष्येष्विह पार्थं ! कोऽपि, तुल्यस्त्वया स्यान्न परन्तु भिल्लः, मत्तोऽपि योग्यो गुरुशिष्य एषः ॥३॥

अपि च सेर्ध्यम्-

अस्य धन्वितया भूमौ सम्मानो मदपेक्षया। भविष्यत्यधिकस्तं किं सिहष्ये ? न, कदापि न ॥४॥ (पाण्डुपुत्रा हस्तिनापुरं गच्छन्ति) [पटीक्षेप:।] जो उनके पास रह कर अपना अभीष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकूँ, क्योंकि मैं शूद्र हूँ और वे ब्राह्मण हैं, जो उच्चकुलोत्पन्न शिष्यों के
द्वारा सेविन रहते हैं। किन्तु ...., जातिभेद पर विचार न
करता हुआ मैं तो उन्हें ही अपना गुरु मानता हूं। विद्यार्थी को सवंथा विस्तृत यश वाले व्यक्ति को ही अपना गुरु बनाना चाहिए।
उन्हें गुरु मान लेने से तो अथोग्य। शब्य का भी समाज में सम्मान
होगा—इस आशा में मैं अपने को उनक। शिष्य ही मानता हुआ
यहाँ स्वयं ही धनुविद्या का अभ्यास कर रहा हूं। (सब उसके मुख
की ओर देखने लगते हैं।

युधिष्ठिर—(विस्मय से साथ) भापके धनुज्ञांन में अब क्या कमी है ? यदि इस प्रकार आपका निरन्तर अभ्यास होता रहे, तो धनुर्विद्या में आप भी गुरुदेव के समान ही विस्तृत यश वाले हो सकते हैं।

एकलव्य—(हर्ष के साथ) जैसा गुरुजनों का आशीर्वाद ।
युधिष्ठिर—(मुस्कान के साथ) अच्छा, अब हम चलते हैं।
एकलव्य—जैसा आएको युक्ता हो। (नाथ जोन्हर प्रकार

एकलव्य — जैसा आपको अच्छा लगे। (हाथ जोड़कर प्रणाम करता है।) अर्जन —(अपने मन में) जुड़ा और अधिमान के मार्थ

अर्जुन —(अपने मन में) शङ्का और अभिमान के साथ — पार्थ ! रहोगे तुम्हीं धनुर्धर,

यह गुरुवचन न होगा भोग्य ?

कैसे फिर विश्वास करूँ मैं ? यह गुरुशिष्य तो मुझ से योग्य ।।३।।

और ईर्ष्या के साथ -

इसकी धनुर्धारिता से मेरी अपेक्षया इस पृथ्वी पर । सहन करूँ गा कैसे मन में मैं इसका वृद्धिङ्गत आदर ?। (पाण्डुपुत्र पाण्डव हस्तिनापुर को चल देते हैं।)

(पटीक्षेप)

[ततः प्रविश्रात धनुर्विद्यागारे चतुष्पादिकासनस्य आचार्यद्रोणः।]

पाण्डुपुत्राः — /प्रविषय) गुरुचरणेषु साञ्जलिः प्रणामो नः ।

द्रोण: — (सहर्षम्) आयुष्मन्तो भवत वत्साः ! सकुशलाः प्रत्यागता भवन्तः । अथ कथ्यतामाखेटवृत्तम् ।

युधिष्ठिर: — (विनम्रम्) विशेषतस्तु न किञ्चित् । परमस्त्येक एकलव्यना-मा भिल्लराजतनयस्तत्र वने धनुर्विद्याप्रवीणस्तदभ्यासे च नैपु-ण्याधिक्यप्राप्तौ संलग्नचित्तः श्रद्धया भक्त्या चाऽत्रभवन्तमेव स्वगृरुं मन्यते ।

द्रोणः — (साश्चयंम्) नाऽस्माभिः कदापि कोऽपि शूद्रः शिक्षितो वत्स ! पुनरयं कुतः प्राप्तः, येनाऽहं स्वगृष्ठिति सम्बोधितोऽस्मि ।

[विचारमग्नो भवति।]

युधिष्ठिरः — भवद्भिः कदापि न शिक्षितोऽपि स श्रद्धया भक्त्या च भवदी-यमेव स्वशिष्यत्वं हृदयेन स्वीकरोतीति विज्ञापितं तेन गुरुदेव !

द्रोण: - (सस्मितम्) भवतु नाम । (किञ्चिद् विचार्य) श्वी गत्वा तं परीक्षिष्यामहे । अथ गच्छत, भगवानयमंशुमाली तीव्रकरोऽपि मन्दिकरणः सूर्योऽस्ताचलमभिवतंते । पक्षिणश्च स्वानि स्वानि नीडानि समाश्रयन्ते । सम्प्रतीयं नः सन्ध्यावन्दनवेला, तदुचितमेव प्रबन्धं कुरुत । अन्यथा विलम्बेन रात्रिभंवेत्, त्वरध्वम्, त्वरध्वम्

पाण्डुपुत्राः - (विनम्रम्) यथाऽऽज्ञापयन्ति गृहपादाः ।

[सर्वे गच्छन्ति । पटीक्षेप:।]

[ततः प्रविशति शयनागारे शय्यारूढ आचार्यद्रोण: ।]

अर्जुनः — (सहसा वेगेन प्रविश्य) प्रणमाम्यहमर्जुनो गुरुदेव !

द्रोणः — (स. श्चर्यम्) वत्स ! कथमागतोऽसि रात्रावद्य ? अपि कार्षि

(धनुर्विद्यागारं में चौकी पर वैठे आचार्य द्रोण का प्रवेश) पाण्डुपुत्र— (प्रवेश लेकर) गुरुचरणों में हमारा सादर प्रणाम ।

आचार्य द्रोण—(हषं के साथ) जीते रहो । आप सकुशल लीट आये । आसेट के वृत्त कहिए।

युधिष्ठिर—(नम्रता से) विशेष तो कुछ नहीं। किन्तु एकलब्य नामक भि-ल्लराज हिरण्यधनु का पुत्र धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण है, जो वन में धनुर्विद्या का अभ्यास करता हुआ श्रद्धा और भक्ति से आप को ही अपना गुरु मानता है।

द्रोण-(आश्चर्य से) मैंने तो कभी किसी शूद्र को धनुविद्या नहीं सिखायी, फिर वह मुझे अपना गुरु कैसे मानता है ? (विचारमग्न हो जाते

हैं।)

युधिष्ठिर — आपके द्वारा शिक्षित न होने पर भी वह श्रद्धा और भक्ति के साथ आपका शिष्यत्व स्वीकार करता है गुरुदेव !

द्रोण — (मुस्कराहट के साथ) अच्छा ! (कुछ विचार करके) ता, कल चल कर हम उसकी परीक्षा लेंगे। अच्छा, घर जाओ। भगवान् सूर्यभी तीव्रकिरणों वाले होकरभी अब मन्दिकरण हो अस्ता-चल पर पहुंच रहे हैं, और पक्षी भी अपने-अपने घोंसलों का सहा-रा ले रहे हैं। अब मेरे सन्ध्यावन्दन करने का समय हो गया है, एतदर्थ शीघ्र ही उचित प्रबन्ध करो, विलम्ब से तो रात्रि भा हो सकती है। शीघ्र सामग्री जुटाओ।

पाण्डुपुत्र— (विनम्रंहोकर) जैसी गुरुँ जी की आज्ञाहो।

(सब चल देते हैं।) (पटीक्षेप)

(शयनागार में शय्या पर लेटे हुए आचार्य द्रोण का प्रवेश ।)

अर्जन—(अचानक वेग से प्रवेश कर) प्रणाम गुरुदेव !

द्रोण---(आश्चर्य से) आज रात में कैसे आये हो वत्स ! क्या कोई नया

CC-O. Prof. Satya Vrat Chastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

द्राण: — (सविस्मयम्) प्रिय ! यदि सोऽस्माकं विज्ञातो भवेत्तत्कथमेव-विधः प्रक्रनः स्यात् ? कोमलवदन ! केनचित्त्वं प्रपीडितः कि केनापि छद्मना ? सत्यं कथय, पाण्डुपुत्र तार्तीयीक !येन तमह यथोचितं दण्डियतुमहेयम् ।

अर्जुनः — (सविनयम्) नहि केनापि पीडितोऽहम्, पर्रामयं मे मानसिकी वेदना, तामेव शमयितुमागतोऽहम् । क्षम्येयं मे धृष्टता । (नि-श्वसिति)।

द्रोण: — (सचिन्तम्) किं कयाचिदापदा ग्रस्तोऽसि ? तत्कथ न स्पष्टी-कुरुषे ? तामहं सर्वथा कण्ठेप्राणोऽपि दूरीकरिष्ये सुमुख ! वद वत्स ! निस्संकोचमेव वद।

अर्जुनः — (सशङ्कम्) प्रभो ! गुरुजनानां कमिप वचनं कदाचि इसत्यमिप भवितुं शक्नोति किम् ?

द्रोण: - नैव कदापि वत्स !

अर्जुनः — (विनम्रम्) तत्कथमेतत्प्रतिभाति भोः ?

द्रोणः — (अवगच्छन्निप तद्भाव, नावगच्छन्निव) किमसत्यमिव प्रतीयते वत्स ! सुस्पष्टं कथय तदहमिप जानीयाम् ।

अर्जुनः — [ससङ्कोचम्) तदेव गुरुदेव ! त ··· दे ··· व !

द्रोण: -- किं वत्स ! किम् ? तत् सुस्पष्टं ....., वद ।

अर्जुन: — त—दे --व, व -- र—म्।

द्रोणः — (साश्चर्यम्) वरम् ! अस्मदीयम् ! तदसत्यिमव प्रतिभाति त्वाम् ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

- अर्जुन (उद्धिग्नता से) समाचार तो मेरा कोई भी आपसे छिपा हुआ नहीं है, और न आगे छिपा रहेगा।
  - द्रोण— (विस्मय से) प्रिय ! यदि वह हमारा अवगत होता तो यह इस प्रकार का प्रश्न ही क्यों होता ? कोमलबदन ! सत्य कहो, तुम्हें किसने किस प्रकार पीडित किया हूं ? जिसे मैं समुचित दण्ड दे सकूं पाण्डुपुत्र ?
- अर्जुन—(विनय के साथ) किसी ने मुझे पीडिन नहीं किया, किन्तु यह मेरी मानसिक वेदना है, जिसे शान्त करने के लिए मैं आपके पास आया हूं। अत: मेरी धृष्टता को क्षमा करे। (गहरी सांस लेता है।)
  - द्रोण (चिन्ता करते हुए) किस आफत में फंने हो ? उसे साफ-साफ क्यों नहीं कहते ? जिसे मैं जान देकर भी दूर करूँगा। सुमुख ! कहा, निस्सङ्कोच होकर कहो वत्स !
- अर्जुन—(शङ्कालु होकर) महाराज ! गुरुजनों का कोई भी वचन क्या अस-त्य हो सकता है ?

द्रोण - बत्स ! कभी नहीं।

अर्जुन—(विनम्र होकर) तो ऐसा मुझे क्यों लग रहा है ?

द्रोण—(उस भावना को जानते हुए भी न जानते हुए) वत्स ! तुम्हें क्या असत्य प्रतीत हो रहा है? सब कुछ स्पष्ट कहो, उसे मैं भी तं सुनूं।

अर्जुन—(सङ्कोच के साथ) व · · · · · हो, गुरुदेव ! व · · · · · ही। दोण—क्या वत्स ! क्या ? उसे स्पष्ट कहो।

अर्जुन - वही, व · · · · र, गुरुदेव !

द्रोण—(आश्चर्य के साथ) व · · · · · र ? हमारा वर ! वह तुम्हें असत्य सा लग रहा है ? अर्जुनः — (विनम्रम्) आं, तदिव !

द्रोणः — वत्स ! मा स्म चिन्तयः । नैतादृक्कह्यं पि भवितुमर्हेत् । वरं मे तुभ्यं साफल्यदायि नूनम् ।

अर्जुन:'— कथमिव विश्वसिमि गुरुदेव ! प्रत्यक्षमेव तेन यत् कार्यं समपा-दि, तन्नाहं कर्तुमहामि । तस्येदं धनुर्यगो मे मानसकण्टकमाजी-वनं भविता । धनुर्विद्यायास्तदभ्यासो दृष्टवच्चेदवाधो भवेत्तद-स्यां जगत्यां तत्सम्मान एव तत्र बहुलः सम्भाव्यते गुरुवर्यपूज्य-पादाः ! पुनस्तद्वरस्य कुतः साफल्यमिति सशङ्कः खिन्नं मे मनोऽतीव, पाहि पाहि मां देव !

द्रोणः — तत्स ! औदासीन्यं मा गाः, विहर प्रमन्नमनास्त्वम् । किमेत-न्मुखमालिन्यं ते सूर्यमन्तरेण कमलिमव रे ! कमलमुख ! तद-कारणमेव ।

अर्जुनः — किं स (एकलब्यः) मभ कीर्तिवाधक कारणमि नास्ति ?

द्रोण: - क्व त्वं सूर्यं इव, क्व च स खद्योततुल्य: ?

अर्जुनः — किन्तु ....., विश्वासो मे कय-न स्थिरीभवति ?

द्रोणः — तवाऽयं भ्रमो बत्स ! वचनेषु विश्वासो न क्रियते चेत् .तद्भ्रान्तेरीषध कुतः ? अनस्तद्वरं कीन्तेय ! सत्यमेव मन्यस्व । श्वो
यदा वयं तमुपगिमिष्यामः, तदा तत्परीक्षानन्तरं वरस्य साफल्य
ज्ञास्यिस प्रेमपुत्र ! त्वदभीष्ट सिद्धमेव सदा निर्वाधम्, यावण्जीवन रणकीशलीयं यशः समुखमवस्थापय धनुर्धरेषु वीरेषु
सत्तर्तामित नः शुभाशीः । (समय — सून त्यन्त्रमवलोक्य)
वत्स ! जातोऽयं रात्री दशधिष्टतः कालः, तद् गच्छ,
विज्ञापय सर्वान् स्वसहोदरान् श्वस्तत्र गमनाय ।

अर्जुन — (विनम्र हो कर) हौ, वह वैसा ही !

ाद्रोण-वत्स ! चिन्ता न करो, ऐसा तो कभी नहीं हो सकता। मेरा वर तुम्हें सफल होगा।

अर्जुन कैसे विश्वास करूँ गुरुदेव ! प्रत्यक्ष ही उसने जो कायं मुझे कर दिखाया, उसे मैं कर ही नहीं सकता। उसका यह धनुपंश मेरा आजीवन मानसकण्टक बनेगा। उसकी धनुविद्या का अभ्यास जिसे मैं वन में देख चुका हूं, यदि लगातार बाधारहित चलता रहा तो इस संसार में उसका बहुत सम्मान होगा गुरुदेव ! फिर उस वर की सफलता कहाँ ? इससे शङ्कालु ही मेरा मन बहुत ही खिन्न हो रहा है इस स्थित से मेरी रक्षा करो गुरुदेव !

द्रोण-वत्स ! उदासीन न बनो, प्रसन्तमन से रहो । विना सूर्य के कमल-मुख ! तुम्हारा यह मुख विना किसी कारण के मिलन क्यों हो रहा है ?

अर्जुन — क्या वह एकलव्य मेरा कीर्तिबाधक नहीं है ? द्रोण — कहाँ तो तुम सूर्य के समान और कहाँ वह जुगनू के समान ? अर्जुन — किन्तु ...., विश्वास स्थिर क्यों नहीं होता ?

द्रोण - तुम्हारा श्रम है बत्स ! यदि बचनों पर विश्वास नहीं किया जा-ता, ता फिर श्रान्ति की औषध कहां ? इसालए कोन्तेय ! उस वर को तो सत्य ही मानो । कल जब हम उसके पास जायेंगे, तब उसकी परीक्षा के बाद उस वर की सफलता को तुम जान सकोग । प्रेमपुत्र ! तुम अपने अभीष्ट को निर्बाध ही सिद्ध समझो, जिससे धनुर्धारी वीरों में अपने रणकौशल से यश को ससुख स्थापित कर सकोगे—यह मेरा पुनः शुभाशीर्वाद तुम्हारे साथ है । (घड़ी को देखकर) वत्स ! रात के दस बजे हैं, अब तुम जाओ और कल एकलब्य के पास चलने की सूचना अपने सभी भाइयों को दे दो। (नेत्रयो दूर्णेट निपात्य) ग्च्छ वत्स ! स्विपिहि, निद्रा चाथ स-म्प्रति बाधते त्वाम्, मा शुचः, त्वदभीष्टं सर्वं साधयामो वयम् ।

अर्जुनः — यथाऽऽज्ञापयन्ति गुरुचरणाः । (स्वगतम्) —

कि ते विधास्यन्ति हि ? नेति जाने,

द्रक्ष्यामि गत्वा गुरुकर्म तच्यवः ।

तन्मे शुभं स्याद् यदि दक्षिणायाम्,

वामेतराङ्गुष्ठगृहोतिरस्तु ।।४॥

[इति विचिन्तयन् गच्छति ।]

द्वोणः — (स्वृगतम्) कृतसेवस्याऽजुंनस्य धनुर्यशस्यम्पादनाय किमहं वचव्यद्धेन तेनाऽस्या विद्यायाः सर्वजातिपूज्येषु भूसुरेषु समरे च
पाण्डवेषु कौरवेषु च सत्तमप्रयोग एव स्यादिति कारयेयं प्रणम् ? परमापत्तिकाले मर्यादा नास्तीति नियमेन यदा तेन तन्न स्वीकरिष्यते, तदा नो वरस्योचितलाभस्याऽप्राप्त्या वचनमसत्यमवेक्षमाणस्य पार्थस्य हृदयान्तगेतं न जाने कि भवेद्धन्तः !
(उत्तानोरस्को भूत्वा) दैवेनाऽहं पुन गुंकदिक्षणारूपेण दक्षिणाऽङ गुष्ठदानाय तं प्रोत्सिहिष्येतमाम् ? कि तत्करवाणि हा ?
येन कदापि तत्सायककर्म स्वसिद्धि न प्राप्त्यतीति निश्चितमेव ।
ततो मे प्रियशिष्यस्याऽर्जुनस्य जगत्यामस्यां तद्धिद्यागतं यशः
सर्वतो हि प्रसरिष्यति नूनम् । यदभीष्टमेषीद् गाण्डीवी, तस्य
सर्वस्याऽवश्य सम्भविष्यति पूर्तिः । ततो म पूजनिमित्तां सादरमितोऽप्यधिकश्रद्धापूर्णां सम्मानभःवनां तस्य हृदि निर्मास्यति
सा वरमूर्तिः, या सर्वथा भविष्यति स्थिरा चिरकालाय । अहो!
सर्वः स्वार्थं समोहते किन्न ?

(नेत्रों में दृष्टि डाल कर) वत्स ! जाकर सो जाओ, इस समय तुम्हें नींद आ रही है, सोच-विचार न करो, तुम्हारे अभीष्ट को हम सिद्ध करेंगे।

अर्जुन-जैसी गुरुदेव की आज्ञा। (मन में)-

क्या वे करेंगे गुरु अब ? न जोने, गुरुकर्म देखूँ कल वन में जाकर ? तब हो मेरा शुभ यदि दक्षिणा में, गुरुदेव मांगे अङ्गुष्ठ जाकर ॥४॥

(ऐसा विचार करता हुआ जाता है।)

द्रोण—(मन में) अपने शिष्य अर्जुन के धनुर्यंश को संसार में स्थिर करने के लिए क्या में वचनबद्ध हाकर समस्त जातियों के पूज्य ब्राह्मणों और पाण्डव तथा कौरवों के मध्य युद्धभूमि में उससे धनुर्विद्या क प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा कराऊँ? आपत्तिकाल में कोई सीमा नहीं रहती - इस नियम से जब वह अपनी उस प्रतिज्ञा को नहीं मानेगा, तो फिर वर के उचित लाभ की प्राप्ति न होने से मेरे बचन को असत्य मानता हुआ अर्जुन न जाने अपने मन में क्या सोचेगा ?

(चित्त लेट कर) दैववश क्या मैं उसे गुरुदिक्षणा में अपना सीघा अंगूठा देने के लिए उत्साहित करूँ? हा! क्या वैसा करूँ? जिससे उसकी धनुर्विद्धा कभी अपनी सिद्धि को प्राप्त ही न करे। फिर मेरे प्रिय अर्जुन का जगत् में धनुर्विद्धा का यश सर्वत्र फैलेगा। जो अभीष्ट अर्जुन ने चाहा था, उसकी अवश्य ही पूर्ति हागी। तदनन्तर मेरे पूजनिनित्त आज से भी अधिक सम्मान उसके हृदय में उत्पन्न होगा, जो चिरकाल तक स्थिर रहेगा। अही! यह कैसा स्वायं है?

(दीर्घ निश्वस्य) हा ! वरपाशे वद्ध ! एकस्य श्रेयः ! अपरस्य नाशः! करवाणि किमिति चेतामि नो । अयं क्षत्रियः, स भिल्लराजः । उच्चोऽयम्, सोऽस्त्यनुच्चः । श्रेष्ठाभिमुखं न श्रेयस्करी नीचवृद्धिः । परमेकात्मने प्रपीडनं किमेतन्न्याय्यम् ? यद्येतन्नाचरामि तन्मे का हानि ? परमस्ति नीचजाते वंधापनं किमुचितमेव ?

(क्षणं विरम्य) नैव, नैव। शूद्रजाते वंधीपनं नोचितं क-दापि। परं तदङ्गु छादानमिप नोचितम्। येन तस्य सर्वास्वा-शासु पयःपातो भवेत्। सर्वात्मना वाञ्छितमिप धनुर्विद्यायाः प्रयोगं विना तज्जीवनं निष्क्रियमेव। हा! पार्थस्याऽसूये! त-दन्तर्गत! मदीयपुत्रसमस्नेह! त्वद्वलात्तन्निष्ठुरमिप कर्मं कर्तुमहं प्रवर्ते। यदा दक्षिणायामञ्जू ष्ठदानं भवेत् तस्य, तद्रणकौशलापे-क्षया मत्कृतस्याऽस्य दुष्कर्मणः प्रकाशेन जनतासु सर्वतस्त्यस्य मान एधेत, तद्धस्तयोरित्थं द्वैविध्येनािप साफल्येन मोदकोपल-व्धिः। किन्त्वहो! ....., किमहं हा! ....., तत्कूर्याम्?

(दक्षिणतः पार्श्वं परिवर्त्यं) हा ! मदीयस्नेहमोह।स्थते ! तव कारणादेव मे श्रव्याः स्युजनानामेवंविधा दुर्वाचः— "सोऽयं द्रोणः क्षत्रियपक्षपाती, येनैकलब्यो दक्षिणा-ज्ञुष्ठहीनोऽकारिं । अञ्जुष्ठोऽयमेव सर्वस्यं भिल्लानाम् ।

अस्याश्रयमन्तरेण कुतस्तेषां शरकर्मणि साफल्यम्

(लम्बी साँस लेकर) हाय, वरदान के जाल में फंस गर्भ हूं, जिससे एक का कल्याण होगा और दूसरे का नाश। क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आता। यह क्षत्रिय है, वह मील है। यह उच्च है, वह नीच है। श्रेष्ठ के सामने नीच का बढ़ना ठीक नहीं होता। किन्तु, एक आत्मा को पीडा देना क्या उचित है? याद मैं ऐसा न करूँ, तो मुझे क्या नुकसान होगा? किन्तु, नीच जाति का बढ़ना क्या ठीक है?

(क्षण भर रुक कर) नहीं, नहीं। नोच जाति का बढ़ना कभी ठीक नहीं। किन्तु .... , उसका अगूठा लेना भी तो उचित नहीं है, अन्यथा उसकी समस्त आणाओं पर पानी फिर जायेगा। सब प्रकार ने वाञ्छित धर्नुविद्या के प्रयोग के विना उसका जीवन निष्क्रिय हो जायेगा। हा! अर्जुन की जलन? और उसके प्रति मेरा पुत्रवत् स्नेह! जिसके बल से मैं उस निष्ठुर कार्य को भी करने में प्रवृत्त हो रहा हूं। जब वह गुरुद्दक्षिणा में अपना अंगूठा देगा, तब रणकौशल की अपेक्षया मेरे द्वारा किये गये दुष्कर्म के प्रकाश से जनता में सर्वत्र उसका मान बढ़ेगा। इस प्रकार से तो उसके दोनों हाथों में दोनों प्रकार की सफलता के लड्डू होंगे। किन्तु अहो! ....., हा! क्या मैं ....., उसे करूं .....?

(दाहिनी ओर से करबट बदल कर) हा मेरे स्नेह की मोहिन्थित ! तुम्हारे कारणवश मुझे लोगों के इस प्रकार के दुर्व- चन भी सुनने पड़ेंगे — "यह वही द्रोण है, जिसने क्षत्रियों का तो पक्ष लिया, और एकलव्य को "", उसके सीधे अंगूठे से भी हीन कर दिया। यह अंगूठा ही तो भीलों का सर्वस्व होता है। इसके विना उनकी धर्जुविद्या के कार्य में सफलता कहाँ ?

जीविकाप्यनेनैव प्राप्यते तैः । परिमदं सर्वमिवचार्यं तज्जीवन-मिह निस्सारमेव कृतमनेन निर्दयेन द्रोणेन तदकार्यंकमं समाच-रता । तादृशं गुरुभक्तं कदापि प्राप्स्यित किमयम् ? येनाऽस्य सम्मानाय स्वजीवनं निष्क्रियमकारि । किमीदृशेन गुरुणा भा-व्यम् ? शिक्षाविषये तु वर्णभेदो न मन्तव्यो विद्यागुरुभिः । '' परमहो ! सम्प्राप्ता केयं विचित्रा गतिः ? हा ! कि करवाणि भोः ?

(वामतः पार्श्वं परिवर्त्यं) तन्न कुर्याम् ? किन्तु वचनं ....., तत्परिवणाद् दुस्थित्या दुविचारत्वादनुचितमेत- त्तर्त्तवं निष्पाद्य कृत्यं ....., हा धिक् हा धिक् जीवन- मिदं ...., स्वाथंपरं ...., कि कुर्वे ? कि करवे ? कि वा कूर्वीय ?

(शय्यात उत्त्थाय गगनाभिमुखो भूत्वा)

भेदभावसय जगत् ! प्राप्तुया नश्चिराय धिक्कारम् । शूद्रोऽयमिति, त्वयाऽस्मि वेशितस्तं दुर्गतं विचारम् ॥६॥ (क्षण विरम्य, शय्यायामात्मानं निपात्य)

यदि जायेत न तादृशभावस्तन्न भवेदयमुपद्रवः। यो ह्यदोषतायुते जीवने भवति दोषतायुतो रवः ॥७॥

(से दृष्टि स्थिरीकृत्य) पश्यामि तावत्, श्वो भवेत् किम् ? ऐं ! किम् ? तदेव भावि, यद् दैवस्य निश्चितपूर्वम् । (इति सचिन्तो विचिन्तयन् भेते) ।

[जवनिका पतति।]

इति राम किशोरिमश्रकृताऽङ्गुष्ठ-दाननाटके चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।

क्योंकि ....., इसी के सहारे उनकी जीविका चलती है। किन्तु, इस सब पर विचार न करके, उत्तके जीवन को निस्सार वना दिया है इस द्रोण ने, वैसा अकृत्य कर्म करके। उस जैसे गुरुभक्त को क्या कभी यह प्राप्त कर सकेगा? जिसने इसके सम्मान के लिए अपना जीवन भी निष्क्रिय बना डाला। क्या गुरु को ऐसा करना चाहिये? शिक्षा के क्षेत्र में तो गुरुजनों को वणंभेद नहीं मानना चाहिए।" अहो! यह विचित्र गित किसने उत्पन्न की? अरे! अब मैं क्या करूँ?

(बायें से करबट वदल कर) तो वैसा न करूँ? किन्तु वचन ....., उसके वशीभूत हो, दुःस्थितिवश, दुविचार के कारण, ऐसा अनुचित कृत्य ....., हा ! धिक्कार है, धिक्कार है इस जीवन को ...., जो स्वार्थ पर है ...., क्या कर रहा हूं ? क्या करूँ? अथवा क्या मुझे करना चाहिए?

(शय्या से उठकर आकाश की ओर मुख करके)

भेदभावमय जगत् ! तुझे यह वार वार धिक्कार। यह है शूद्र, हमारे मन में आने दिया विचार।।६॥

(क्षण भर रुक कर, पुन: शय्या पर लेट कर)

यदि वैसा विचार निह होता तो न उपद्रव होता आज । जो अदोषता मय जीवन में सब विगाड़ता निर्मित साज ।।

(आकाश में दृष्टि को स्थिर करके) देखता हूं कल क्या होता है ? ऐं! क्या ? वहीं हांगा, जो देव ने पहले से नि-श्चित कर दिया है। (इस प्रकार सचिन्त ही विचार मग्न हो श्रय्या पर पड़े रहते हैं।)

[जवनिका गिरती है।] चतुर्थ अङ्क समाप्त।

## ग्रङ्गुष्ठ-दानम्

### अथ पञ्चमोऽङ्कः ।

[स्थलम्—एकलव्यस्य कुटीरः । स द्रोणस्य मृण्मयमूर्तिसमक्षमु-पासनाय हृदि मनसा गुरुं ध्यायन् भूस्थापिताष्ठीवदामनस्थः । सादरं पुष्पाणि भूमावेव स्थापयन् प्रार्थयते ।]

एकलब्य: — देहि विद्यावरं गुरुवर !

ममाऽभ्यासो भवेत्सफलो, नाददत्किञ्चदवरोधम्। सर्वदा विजयै रिपून् स्वान्, दददिमं तत्र धनुर्बोधम्।। द्रवेः शुद्रे मिय द्विजवर ! देहि शरविद्यां हि गुरुवर !।।१।।

> द्मजेयं कर्तव्यमार्गं जीवने तन्नो त्यजेयम् । पतेयं वाधासु नित्यं परं तस्मान्न विरमेयम् ॥ निवंहेः शूद्रान् सुधीश्वर ! देहि शरिवद्यां हि गुरुत्रर ! ॥२॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वंश्याः शूद्रा वा प्रजा राजः । स्वदेशीया विदेशीयाः सन्ति सर्वे तुल्यभाजः ॥ पुनस्ते ज्ञानं क्व बुधवर ! देहि विद्यावरं गुरुवर ! ॥३॥

# अङ्गुष्ठ-दान

पञ्चम अङ्क

[स्थल एकलव्य का कुटीर । एकलव्य गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति स्थापित कर, उसी के सामने बाण चलाने का अभ्यास करने के लिए अपने हृदय में मन से गुरु का ध्यान करता हुआ, धरती पर घुटनों के बल आसन लगा, आदर पूर्वक गुरुचरणों में फूल चढ़ाता हुआ प्रार्थना करता है।]

एकलव्य- गुध्वर! दो शर-विद्या का वर।

मेरा अभ्यास सफल होवे,
बाधा कोई निह आ सोवे।
अपने अरियों पर रणमू में,
तव धनुर्बोध का फैंकूं शर।
गुरुवर! दो शर—विद्या का वर।।१॥
कर्तव्य मार्ग पर सदा चलूं,
आंधी आने पर भी न हलूं।
जीवन में सीखूं त्याग सदा,
शूद्रों पर कृपा करो द्विजवर।
गुरुवर! दो शर—विद्या का वर।।२॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शुद्र ये, एक तुल्य हैं वर्ण सभी। स्वदेशीय अरु विदेशीय में, नहीं भेद हो अन्य कभी।।

क्या ज्ञान तुम्हारा यह बुधवर ? गुरुवर ! दो शर–विद्या का वर ।।३॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

वयं सर्वे मनोः पुत्रास्ततः कोऽयं जाति—भेदः ? कृतं मध्ये तं विहातुं नाद्य सज्जोऽसीति खेदः ।। ऐक्यमधुना शिक्षयेः नर ! देहि विद्यावरं गुरुवर ! ।।४।।

विहेयास्ते दुविचाराः, सर्वथा शिक्षितो विश्वः । अन्यथा देशस्य रक्षा दुष्करा स्यात्सर्वतः श्वः ॥ तदात्माऽयं समो द्विजवर ! देहि विद्यावरं गुरुवर ! ॥४॥

[अतः परं धनुर्गृ हीत्वा तदभ्यासायोत्तिष्ठित । पा-ण्डुपुत्रैः सह समक्षमायान्तमा वार्यद्रोणमवलोक्य, स्वगतम्] अहो! गुरुदेव इत एवाभिवर्तते । धन्यं मे भाग्यम् । [अग्रे द्वित्राणि पदानि गत्वा सहषे प्रणम्य, प्रकःशम्] आगम्यताम्, आगम्यतां गुरुदेव ! पूयतां सुपादपद्मार्चनया पाण्डुपुत्रैः सह दीनस्याऽस्य शिष्यस्याऽयं कुटीरः, सनाथीक्रियतां चाऽस्य स्वान्तम् ।

द्रोणः - (हस्तमुधम्य) स्वस्ति ते वत्स !

एकलव्यः — (आसन विस्तायं, बद्ध्वाडञ्जलिम्, सम्मुखमवस्थित्य सनम्र-भावम्) कथङ्कारं समभूवन् गुरुचरणाः सानुकम्पाः सेवकमेनमद्य शूद्रमपि शोधयितुम् ? कथ्यतां कृपया गुरुदेव !

द्रोणः — (सस्मितम्) एषु पाण्डुपुत्रेषु मे प्रियांशब्येषु पटुशिष्येणाऽर्जुनेन सपरिचयं त्वदीयं धनुर्विद्याकौशलसम्बन्धि वृत्तमशेषमश्रावि । तदेव कारणमभूदवाऽऽगमनस्य मे प्रियशिष्य ! ते सुदर्शनाय ।

एकलव्यः -- (प्रसन्तमनाः, स्वगतम्) अहोभाग्य मे ! सफला मे विद्या ! यद् गुरुणेत्थं प्रशस्यते हम हैं मनु—पुत्र सभी मानव, फिर कहाँ जाति में भेद रहा ? यह मध्यकाल के जाति—भेद को तुमने मन में क्यों ने सहा ? दो सीखं एकता की द्विजवर। गुरुवर ! दो शर—विद्या का वर ॥४॥

त्यागो दुर्विचार ये मन के, सर्वथा आज शिक्षित जग यह। अन्यथा देश की रक्षा भी दुष्कर होगी, मेरा मत यह।।

> यह आत्मा समान है बुधवर । गुरुवर दो शर-विद्या का वर ॥ ॥ ॥

[इसके बाद धनुष लेकर, उसके अभ्यास के लिए उठना है, पाण्डु
पुत्रों के साथ सामने से आते हुये गुरु द्रोणाचार्य को देखकर, मन
में] अहो ! गुरुदेव तो इधर ही आ रहे हैं, घन्य हैं मेरे भाग्य !
[आगे दो तीन कदम बढ़ कर हुष के साथ प्रणाम करके] आइए,
आइए गुरुदेव ! अपने इस दीन शिष्य के कुटीर को पाण्डु
पुत्रों के साथ अपने चरण कमलों से पवित्र की जिए और इसके
स्वान्त को सनाथ की जिए।

द्रोण — (हाथ उठा कर) वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । एकलव्य— (आसन विछा कर, हाथ जोड़ कर, सामने खड़े होकर, विनम्र

भाव से) इस शूद्र को पवित्र करने के लिए आज गुरुवरण कैसे सानुकम्प हुये हैं ? कृपा करके सब कुछ बताइए गुरुदेव !

सानुकस्प हुथ है : हुना करा सा कुछ कर स्पृत्र द्रोण — (मुस्कराहट के साथ) इन मेरे प्रिय शिष्य पाण्डुपुत्रों में से अर्जुन ने तुम्हारी धर्नुविद्या की कुशलता के विषय में मुझे पूरी जानकारो

दी है। इसी कारण हम तुम्हें देखन यहाँ आये हैं।

एकलब्य — (प्रसन्त मन हो मन में) अही ! मेरे भाग्य घन्य हैं, आज मेरी विद्या सफल हुई, जो गुरुदेव इस प्रकार प्रशंसा कर रहे हैं

जीवनमिष धन्यं, यदुच्चवर्गपक्षपातिना द्रोणेनाच शूद्रस्यापि शिष्यत्वं स्वीकारितं मया । किन्न क्रियते संलग्निचत्तेन पुरुषण ? (प्रकाशम्) अनुगृहीतोऽस्मि बहु । अद्य मे प्रफुल्लं चेतो भवतां दर्शनेन ।

द्रोण: - वरं वत्स ! वरम् । अथ तव धनुर्नेपुण्यं द्रष्टुकामा वयम् ।

एकलब्य:— (सहषंम्) दृश्यतां गुरुदेव! कृतार्थोऽस्मि (शराभ्यासकीशलं दर्शयति)।

द्रोण: - (शरक्षेपचातुर्यमवलोक्य) प्रष्टव्योऽसि वत्स!

एकलब्य:— (सविनयम्) आज्ञाप्यतां गुरुदेव ! पश्यामि, दासोऽयं कां सेवां प्रस्तौतु ?

दोण: — (सोत्कण्ठम्) कस्त्वामिशक्षयद् धनुर्विद्यामिमाम् ? सत्यं कथय सत्यम् ।

एकलब्य: (सहर्षम्) भवानेव गुरुदेव !

द्रोण: - (साश्चयंम्) अहम् ?

एकलव्य : - (विनम्रम्) आम्, गुरुदेव ! भवानेव ।

द्रोण:—(साश्चर्यम्) तत्कथम् ? नाद्याविध मया कोऽपि शूद्रः शिक्षितोऽभूत् किमुत त्वम् ?

एकलब्य:— (सहर्षेस्मितम्) यदाऽहं गुरुदेव ! धनुर्विद्यां ग्रहीतुं सर्वतः प्रसिद्धानां भवच्चरणारिवन्दानां गन्धच्छायामाश्रयितुमगच्छम्, तदा "शूद्रोऽसि त्वं, नासि संस्पृत्रयो नः, शूद्राणामप्रवेशोऽस्मिन् रणविद्यापीठे" इति कथयद्भिस्तत्र श्रीमद्भिर्गिनिषद्धप्रवेशेन मया तिच्चन्ताकुलेन परावर्तंनकाले ततः कान्तारपथे दृष्ट्यां समागतेन महर्षिणा ब्रह्मपुत्रेण

आज मेरा जीवन भी धन्य है कि उच्च वर्ग का पक्ष लेने वाले आचार्य द्रोण के द्वारा भी मैंने शूद्र का शिष्यत्व स्वीकार करवा लिया है। एकाग्र मन वाला व्यक्ति क्या नहीं कर सकता ? (स्पष्ट रूप से) मैं वहुत ही अनुकम्पित हूँ, आज मेरा मन आपके दर्शन करके बहुत ही प्रसन्न है।

द्रोण — अच्छा वत्स ! अच्छा । अब हम तुम्हारी धर्नुविद्या का कौशल देखना चाहते हैं।

एकलव्य- (हर्ष के साथ) देखिए गुरुदेव ! आज मैं कृतार्थ हुआ। (अपने शराभ्यास का कौशल दिखाने लगता है।)

द्रोण — (वाण सञ्चालन में चतुरता देखकर) वत्स ! तुम से कुछ पूछना है।

एकलव्य— (विनम्रता के साथ) पूछिए गुरुदेव ! देखता हूँ, यह शिष्य आप की क्या सेवा कर सकता है ?

द्रोण - (उत्कण्ठा के साथ) बताओ, तुम्हें यह धर्नुविद्या किसने सिखायी? सत्य, कहना सत्य।

एकलव्य - (हर्ष के साथ) आपने ही गुरुदेव !

द्रोण - (आश्चर्य के साथ) मैंने ?

एकलव्य- (विनम्र हो कर) हाँ, गुरुदेव ! आपने ही।

द्रोण — (आश्चर्य करके) सो कैसे ? आज तक मैंने किसी शूद्र को शिक्षा नहीं दी, फिर तुम को मैंने कैसे धनुर्विद्या सिखायी ?

एकलब्य (हर्ष के साथ मुस्कराने हुए) जब मैं गुरुदेव ! आपके चरण— कमलों में धर्नुविद्या सीखने गया था, तब आपने मुझ से कहा था, 'वत्स!तुम शूद्र हो, अस्पृश्य हो, इस रण विद्यापीठ में शूद्रों का प्रवेश नहीं होता। 'तदनन्तर वन मार्ग में आते हुए ब्रह्मपुत्र नारद जी ने मुझे दर्शन दिये । उन्होंने मेरी निराशता का कारण पूछने पर बताया, CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh ''अभ्यास एव गुरुः'' इति समुर्णादष्टेन भवन्तमेव गुरुं मन्यमा-नेन सादरं स्वहृदये प्रतिष्ठापितभवन्मूर्तिना निष्पादितेऽस्मिन् शराभ्यासे यत्किञ्चिदत्र साफल्यं समासादितम्, तत्सर्वं भवद-नुकम्पाया एव फलिमिति स्वीकुर्वाणाः सर्वथा मां स्वशिष्यमेव हृदाऽङ्गीकुर्वन्तः "शिक्षितोऽयं मयैकलव्यनामा शूद्रोऽपि कश्चि-त्' इति मन्यन्तामवश्यमेवात्रभवन्तो गुरुचरणाः।

द्रोणः — (सस्मितम्) तर्हि गुरुदक्षिणापि प्रदेया त्वया ।

एकलब्यः — (सश्रद्धम्) अवश्यं गुरुदेव ! तद्दानमन्तरेण तु शिष्यस्य विद्या सफलापि न भवेत्। आज्ञाप्यतां किमादातुमीहन्ते भवन्तस्तद्र्पेण? कृतज्ञोऽस्मि, किमीदृशं तद् वस्तु, यदर्पयितुं गुक्चरयोर्नाहामि देव !

द्रोणः — (स्वगतम्) धन्योऽयं भिल्लजातः । गुरुश्रद्धापूर्णमस्य हृदयम् ! सद्गुणो न कस्यापि वंशविशेषस्य जातेर्वा पतृकधनम् । यादृशं यस्य कर्म, तादृशा एव तस्य गुणाः । पुरुषः शूद्रो भवेदुच्चकुल-सूतो वा ? गुणास्तत्र भवन्ति मुख्याः । जन्मनाऽयं शूद्रजातः परं गुणैरुच्चकुलोद्भत इव । तादृशा वै सर्वे सद्गुणाः सन्त्य-स्मिन् समाहिताः, यादृशा एकस्मिन्नुच्चकुलप्रसूते भाव्याः । अ-तोहि जन्मना जाति-विशेषो न मन्तव्यो वुधै:। सद्वंश्यस्तु स-द्गुणविहीनोऽपि श्रेष्ठो मन्यते, किन्तु सद्गुणोपेतोऽपि शूद्रो न कदापि श्रेष्ठः कथ्यते । शूद्रस्तु दूरतोऽपसार्यः, सर्वथाऽपस्वर्श एव मन्यते – इत्ययं को न्याय: ? (सानर्वेद विचिन्त्य) किन्तु ...., न कोऽपि यथाविधि प्रचलति यद् यस्मै रोचते, स तत्करोति । (सान्तविषादम्)

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kos

'वत्स ! अभ्यास ही गुरु होता है, अतः तुम वन में रहकर आचार्य द्रोण को ही मन में अपना गुरु मानते हुए निरन्तर वाण चलाने का अभ्यास करो, जिससे एक दिन तुम उसमें कुशलता प्राप्त करोगे।" उनके इस उपदेश को ग्रहण कर, आप को मन में गुरु मानते हुए इस वन में मैंने धर्नुविद्या का अभ्यास कर जो कुशलता प्राप्त की है, वह सब आपकी कृपा का ही फल है। अतः आप मुझे अपना ही शिष्य समझें गुरुदेव ?

द्रोण—(मुस्कराहट के साथ) तव तो तुम्हें गुरुदक्षिणा देनी होगी।

एकलव्य — (श्रद्धा के साथ) अवश्य लीजिये गुरुदंव ! गुरुदक्षिणा दिये विना तो शिष्य की विद्या भी सफल नहीं होती । आज्ञा दीजिए, गुन्द-क्षिणा में आप क्या लेना चाहते हैं ? मैं आप का कृतज्ञ हूं, कहिए, वह ऐसी कौन सी वस्तु है ? जिसे मैं गुरुचरणों में अपित कर सकूं।

द्रोण—(अपने मन में) यह भिल्लपुत्र धन्य है। इसका हृदय गुरुश्रद्धा से परिपूर्ण है। सद्गुण किसी वंश विशेष अथवा जाति का पैतृक गुण नहीं है। जिसका जैसा कमें है वैसे ही उसके गुण हैं। पुरुष शूद्र हो अथवा उच्चकुलोत्पन्न, उसमें गुण मुख्य होते हैं। जन्म से तो यह शूद्र है, किन्तु गुणों से उच्चकुलसुत के समान है। वैसे ही समस्त सद्गुण इसमें हैं, जैसे एक उच्चकुलोत्पन्न में होन चाहिए। इसलिए विद्वानों को जन्म से जाति नहीं माननी चाहिए। कुलीन व्यक्ति गुणहीन होते हुए भी श्रेष्ठ माना जाता है, किन्तु सद्गुणों से युक्त होता हुआ भी शूद्र कभी श्रेष्ठ नहीं माना जाता। शूद्र तो दूर से हेय है, अस्पृश्य है-यह क्या न्याय है? (निर्वेद के साथ सोचते हुए) किन्तु ……, कोई नियमपूर्वक नहीं चलता। जो अच्छा लगतहै, वह वही करता हैं। (आन्तरिक दुःख के साथ)

अहो ! परवशस्थितवशादद्याहमिप, येन स्वगुरुमंन्ये, तज्जीव-नस्य नाशहेतु भंवामि । हा! परिस्थितिदास ! पुरुष! त्वां धिक् सर्वथा । कि वेयं विचित्रा गितरीश्वरस्य? भवितव्यं भवत्येव । तत्पुनः कि कुर्याम् ? करणीयमिप तदेव, यद् निश्चितं पूर्वमेव दैवेन । हा ! हन्तः ! धिङ् माम् । (वक्षसि प्रस्तरं निधाय) अस्तु ! (प्रकाशम्) प्रदीयतां वत्स ! स्वकीयोऽयं दक्षिणोऽङ्गः-च्ठः । (सनिश्वासमधोमुखीभूय भिक्षुरिव हस्तं प्रसारयित) । (सहषम्) अलमलं गुरुदेव ! दासस्त्वयं स्वमस्तकमिप विनित-

एकलब्य: - (सहष्म्) अलमलं गुरुदेव ! दासस्त्वयं स्वमस्तकमपि विलत-या दातुमलं भवतां श्रेयसे, िकमनेनाऽङ्गुष्ठेन ? गृह्यतां तावदय-म् । [दक्षिणकरस्याऽङ्गुष्ठं लिवत्रेण कर्तयित्वा तद्धस्ते समर्प-यति ।]

["गुरुभक्तोऽयं विजयतेतरां नितराम्, गुरुभक्तोऽयं विजयतेतरां नितराम्" इत्यं भवति जयघोषः । तं निशम्य गुरुद्रोणः पाण्डु-पुत्राश्च सर्वे विस्मिता भवन्ति ।]

युधिर्घाच्ठरः — (स्वगतम्) धन्योऽयं घन्यः । सत्येयं गुरुश्रद्धा । अनन्या च गुरुभिन्तः । यत्कार्यसम्पादनाय धनुविद्याभ्यासनकार्पीदयम्, स
सर्वो वैफल्यं गतः । परमस्य गुरुभिन्तगतिमद यशस्तावज्जगत्यामवितिष्ठेत, यावन्सूर्यचन्द्रभसावुदियाताम् । अहो ! गातचक्रम् ! न जाने, किविधोऽनथींऽनुदिनं सम्पद्यते ।

अर्जुन — (स्वगतम्) अपारमेव मिय गुरो: प्रेम । यदभीष्टं मे

अहो पराधीन वृत्ति होने से मैं भी, जिसके द्वारा गुरु माना जा रहा हूं, उसी के जीवन-विनाश का कारण वन रहा हूँ। अरे ! परिस्थिति के दास पुरुष ! तुझे सर्वथा धिक्कार है। यह कैसी विचित्र गति है ईश्वर की ? जो भवितव्यता है, वह तो होकर ही रहती है । फिर मैं क्या कर सकता हूं ? वही होना है, जो दैव ने पहले से ही निश्चित कर दिया है। हा दैव ! मुझे धिक्कार है। (छाती पर पत्थर रख कर) होने दो, जो होना है (स्पब्ट रूप से) वत्स ! अपना यह सीधा अंगूठा दे दो । (गहरी साँस लेकर नीचे मुख किये हुए भिक्षुक के समान हाथ फैला देता है)।

एकलव्य--(हर्ष के साथ) बस गुरुदेव ! वस । यह सेवक तो आपके कल्याण के लिए अपना मस्तक भी दे सकता है, फिर यह अंगूठा तो क्या है ? लीजिए इसे। (सीधे हाथ के अंगूठे को चाकू से काट कर उनके हाथ पर रख देता है)।

#### (नेपथ्य से)

('गुरुभक्त की जय हो, गुरुभक्त की जय हो'-ऐसा जय घोष हो-ता है, जिसे सुनकर आचार्य द्रोण और समस्त पाण्डव विस्मित हो जाते हैं।)

युधिष्ठिर— (अपने मन में) धन्य है, यह धन्य है। सच्ची है इसकी गुरु-श्रद्धा और अनन्य है इसकी गुरुभक्ति। जिस कार्य के स-म्पादन के लिए इसने धर्नुविद्या का अभ्यास किया, वह सब वि-फल हो गया। इसका गुरुभिवतपूर्ण यश तब तक संसार में रहेगा, जब तक सूर्य और चन्द्रमा उदित होते रहेंगे ! अहो ! सांसारिक गति चक्र ! न जाने, प्रतिदिन कैसा कैसा अनयं होता रहना है ?

अर्जुन — (अपन मन में) मेरे प्रति गुरु का प्रेम अपार है। जो मुझे अभीष्ट था, वह सब कुछ हुआ-यह गुरु जी के कार्य का साक्षात् प्रमाण है।

किन्त्वस्मात्सभूतकार्यात्तस्य जीवने न जाने कियतीनां विषम-स्थितीनां साम्मूख्यं भवेत्, सर्वथा स वैफल्यमेवाप्नुयाद् धनु-ष्प्रयोगावरोधादिति निश्चितं किम् ? तदस्तु, परमनया चिन्त-या मे किम् ? भवितन्यमभूदेव । "स्वकार्यं साधयेद् धीमान्" इत्यत्र मे दृढतरोऽयं विश्वासः । तत् सर्वमनुपयुक्तानित नोत्प्रे-क्षे। (ईब्यगितं हर्षं प्रकाशयति)।

[तत्कराद् रक्तस्रावं विलोक्य सनिर्वेदं मनिस ] अहो ! द्रोण: --नथौंऽकारि मयाऽयम् ? किञ्चिदपि विचारितं न वा ? स्वाच्छ-न्द्यमेवाचरितम् ? किमस्मै दुष्कर्मणे समभून्मे जन्म ? वर्णभेद स्त्यनुचित एव कल्पितश्च । हा ममोच्चकुलपक्षपात ! ञ्चित्कारितं त्वया, तत्फलं सर्वमहं भोक्ष्येऽवश्यम् । परमेशदृष्ट ट्या सर्वे समानभाजः, तत्र न कोऽप्युच्चो नीचो वा, कृतापरा-घः सर्वथा दण्ड्य एव । कर्मणाऽयं सर्वथा सत्कुलोत्पन्न इव सं-स्पृथ्यो मे शिष्येषु मुख्यः। तत्राऽहमविचारितिमव तद्वैपरीत्य-मितं किमित्थमकार्षं हा ! धिङ्मां धिङ्मां जातिभेदगतस-ङ्कीर्णविचारकं ब्राह्मणाद्यमम् । (प्रकाशम्) वत्स ! नासि त्वं शूद्र:, शूद्रास्तु ते सन्ति, येषां दुविचाराः स्युः । त्वन्त्वायंकुलसंभू-तोऽसि । आगच्छ मामङ्ग ! एतद् दुगंतं हृदयमाश्लिष्य पुनीहि मे मानसम् । [इति सवाष्पनेत्रो गद्गदहृदयस्त वक्षसाऽऽलि-क्रिति।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosh

इस कार्यके कारण जीवन में न जां कितनी विषम परि-स्थितियों का सामना उसे करना होगा ? जिनमें धनुष्प्रयोग के अवरोध के कारण उसे सवंत्र निष्फलता ही प्राप्त होगी, किन्तु मुझे इस चिन्ता से क्या मतलव ? जो होना था, वह हो गया। 'बुद्धिमान् पुरुष को अपना कार्य जैसे तैसे सिद्ध कर ही लेना चा-हिए—इसमें मेरा दृढ विश्वास है। इसके अतिरिक्त और सब कुछ व्यथ है, उस पर मुझे कुछ भी सोचना नहीं है (इस प्रकार ईर्ध्या के साथ प्रसन्नता व्यक्त करता है।)

द्रोण -- (उसके हाथ से रक्त का स्नाव देखकर निर्वेद के साथ मन में) अहा! मैंने यह क्या अनर्थ कर दिया? क्या कुछ भी विचार नहीं किया ? स्वच्छन्दता का ही आचरण किया ? क्या इस दुष्कर्म के लिए ही मेरा जन्म हुआ ? वर्ण-भेद ? वर्णभेद तो सर्वथा अनुचित ही है। हाय! मेरे उच्चकुल के प्रति पक्षपात! तूने मुझ से जो कुछ कराया है, उसका फल तो मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा । परमेश्वर की दृष्टि में ये सभी समान है, वहां न तो कोई उच्च है और न कोई नीच। जिसने अपराध किया है, उसे तो दण्ड मिलेगा ही । कर्म से तो यह सर्वेषा सत्कुल में उत्पन्न व्यक्ति े के समान हां मेरे शिष्यों में बराबर स्पर्श के योग्य है। फिर भी मैंने यह विना विचारे सा उसके विपरीत कार्य कैसे कर दिया ? हा ! मुझ जातिभेद के जाल में फंसे संकीर्ण विचार वाले नीच व्राह्मण को धिक्कार है। (स्पष्ट रूप से) वत्स ! तुम शूद्र नहीं हो । शूद्र तो वे हैं जिनके बुरे विचार हैं । तुम तो आर्यकुलसंभूत हो । आओ अङ्ग ! आओ, इस दुर्विचार परिपूर्ण हृदय को आलि-क्तिन कर मेरे मन को पवित्र करो। (इस प्रकार नेत्रों में आंसू लिये हुए गद्गदहृदय हो छाती से उसका आलिङ्गन करते हैं।)

एकलव्यः — (सहर्षम्) चिन्तयाऽलं गुरुदेव ! यद्भूतं तच्युभम् ।

द्रोणः — (सवाष्पनेत्रम्) वत्स ! भवतु ते कल्याणम् । विश्वस्मिन् लोक-स्थितिपर्यन्तं भवेत्तं सर्वतः सम्मानः । शिष्येषु त्वं प्रियशिष्य-त्वेन परिगणितः सन् अनुपमं यशः प्राप्नुहीति मम शुभाशीः। [इति गम्भीरमुखो गुरुद्रॉणः पाण्डुपुत्रैः सह ततः प्रतिष्ठते ।]

एकलव्यः — (सहर्षम्) अनुकम्पितोऽस्मि । गृरुदेव प्रणामः ॥ [जवनिका पतति ।]

नेपथ्यादन्ते श्र्यते भरतवाक्थमेतत् —

्र शिष्याः स्युरेवं गुरुभक्तिलीनाः, निजं न गुरुभिः स्थानं विहीयताम् । सर्वत्र पूजा स्यात्सद्गुणानाम्, सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ॥६॥

अपि च ---

्र भारत नत्तरप्रदेश एटा जनपद-सोरोंवासी विक्रमस्य वसुभूखात्माब्दे (२०१८) चैत्रे शास्त्र्युपाधिमान् । हीतीलालकलावतीसुतो रामिकशोरिमश्र इह ्राताटकेऽङ्गुष्ठदाननामके पञ्चममञ्जू कृतवान् ।।

🧢 🤄 😝 [सर्वे निष्क्रान्ताः।]

· ? इति, रामिकशोरिमश्रकृतमङ्गुष्ठदानं पञ्चाङ्कात्मकं नाटकं क्षा ६१ द्वार हा समाप्तम् ।

एकलव्य — (हर्ष के साथ) चिन्ता न करें गुरुदेव ! जो हुआ, वह ठीक हुआ। द्रोण — (नेत्रों में आंसू लिये हुए) वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो । जब तक संसार रहे, सर्वत्र तुम्हारा सम्मान हो । मेरे शिष्यों में तुम गुरुभक्त के रूप में परिगणित होकर अनुपम यश प्राप्त करो — यह मेरा आशीर्वाद है । (इस प्रकार गम्भीरमुख हो गुरु द्रोण पाण्डुपुत्रों के साथ वहाँ से चल देते है ।)

एकलव्य — (हर्ष के साथ) अनुकम्पित हूं, गुरुदेव ! प्रणाम । (जवनिका गिरती है ।)

नेपच्य से भरतवाक्य सुनायी पड़ता है —
गुरुभक्त होवे शिष्य निरन्तर
छोड़े अपना स्थान न गुरुजन ।
हो सद्गुणगौरव जगती में
सरस्वती हो पूजित जन-मन ॥६॥

और भी-

भारत उत्तर प्रदेश एटाजनपद—सोरोंवासी, होतीलालकलावतीतनय 'शास्त्री' उपाधिधारी, रामिकशोर मिश्र ने रचना की अङ्गुष्ठदान की। संवत् दो हजार अट्ठारह हो कविकीर्तिविहारी।।

नाटक समाप्त।

#### नाटककार-परिचायिका-

कलावतीतनूजेन होतीलालकृतात्मना ।
गङ्गा-चन्द्र-फूलपूर्वेः सहायैरप्रजै र्युजा ।।१।।
बाण-प्रह-निधि-भू (१९६५) वर्षे, वैक्रमे शुक्लफाल्गुने ।
षष्ट्यां शनौ प्रजातेन प्रसिद्धोत्तरभारते ।।२।।
आत्मेन्दुखात्मतो (२०१२) वाजिभूखात्मान्तं (२०१७) च धीमता ।
किशोरकाव्य-गीताभ्यामष्टोक्तिशतकेन च ॥३।।

बालवीर-सुदायाभ्यामन्तर्वाहेन सर्वतः

निबन्ध-बन्धादिग्रन्थैः ख्यातिप्राप्तेन संस्कृते ॥४॥

रामिकशोरिमश्रेण शूकरक्षेत्र-वासिना । चैत्रस्य कृष्णपक्षेऽब्दे वसुभूखात्मवैक्रमे (२०१८) ॥ ॥

प्रतिपत्पञ्चमीगध्ये सुधीज्ञेयिमदं कृतम् । भवद्रुचिकरं भवेद् अङ्गुष्ठ-दाननाटकम् ॥६॥

श्रीमती देवी मिश्रा, एम. ए.

### नाटककारपरिचायिका-

अङ्गुष्ठदानकार— रामिकशोर मिश्र, शास्त्री । पितृनाम — पण्डित श्री होतीलाल मिश्र । मातृनाम— स्वर्गीया श्रीमती कलावती मिश्रा । अग्रजनाम— श्री गङ्गासहायमिश्र, श्रीचन्द्रसहाय मिश्र, श्रीफूलसहाय मिश्र । जन्मतिथि — फाल्गुन शुक्लषष्ठी, शनिवार, विक्रमसंवत् १६६४ ।

(२४-२-१६३६ ई०) विक्रम संवत् – २०१२ से – २०१७ के मध्य नाटक से पूर्व की रचनाएँ –

(१) काव्य— १- किशोरकाव्यम्, २- किशोरगीतम्, ३- अष्टोक्तिशतकम्, ४- बालवीरम् ।

- (२) कथा-- सुदायः।
- (३) उपन्यास अन्तर्दाहः ।
- (४) निबन्धसंग्रह— निबन्धबन्धः ।

अङ्गुष्ठदान का रचनाकाल—
चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से पञ्चमी तक विक्रम संवत्—२०१८।
रचनास्थान शूकरकेत्र सोरों (एटा) उ० प्र०।

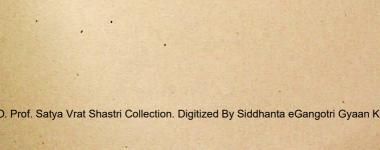
—श्रीमती देवी मिश्रा, एम. ए.

Dern freif fer finele...

and the state of the first of the state of t

grave rations are property of the seather specific

NA THE SAFETY



## कवेः प्रकाशिताः संस्कृतप्रन्याः

- १- विद्योत्तयाकानिदासीयम् (बहाकाव्यव्)।
- २- काव्यकिरचावकिः (काव्यसंबद्धः)

उत्तरप्रदेश खंस्कृताऽकादमी खखनऊतः पुरस्कृदा ।

- ३- बीवषढध्वजसपादजतकथ् (स्तोत्रकाव्यम्)।
- ४- बाजचरितम् (बीतिकाव्यम्)।

# कवेरन्याः संस्कृतरचनाः प्रकाशनद्वारि

- प्र- अम्तर्दाहः (उपन्यासप्रतियोविद्यायां पुरस्कृत उपन्यासः) ।
- ६- त्यागपवितरासम् (नाटखव्रतियोगिवायो पुरस्कृतनाटकम्)
- ७- पत्नीत्यागम् (नाटकप्रतियोगितायां पुरस्कृतमेकारक्नाटकम्)
- द- जिल्लास्वरूपम् (एकास्तुनाटकम्)।
- १- ध्रुवव् (एका पुनाटकम्)।
- १०- किसोरकपाविः (कवासंग्रहः)।
- ११- वसन्तविज्ञकम् (वेषस्तुतिकाव्यम्)।
- १२- छन्दोऽनुखन्धानम् (छन्दःसास्त्रीय ग्रन्थः)।
- १३- इचाऽपुषन्धायम् (छन्दः खाम्त्रीय बन्यः)।
- १४- निवन्य-बन्धः (निवन्धसंप्रहः)।
- १५- एकाञ्चावनिः (एकाञ्चसंग्रहः)
- १६- संस्कृतचोध प्रवन्धः 'संस्कृत छन्दों का उदभव तथा विकास'।

### हिन्दीरखनाः

- १- किमोरकविताकर (कवितासंग्रह)।
- २- अङ्गुष्ठ-प्रदान (खण्डकाच्य)।
- ३- पतिपत्नी विवाद (खण्डकाव्य)।
- ४- लड़का लड़की एक समान (एकाङ्की)।
- ५- यक्षसन्देश (मेघदूत का भावानुवाद) ।
- ६- सुलहपाँचपचीसी (जनभाषाकाव्य)।